जो इस पुस्तक की प्रेरणा के मूल स्रोत हैं; और लेखक जिनका
शिष्यत्व-लाभ करके गौरवान्वित हुआ है,
उन्हीं गुरुवर स्वर्गीय आचार्य
पं० रामचन्द्र शुक्ल
की परम पवित्र स्मृति में ।

—लेखक

जो इस पुस्तक की प्रेरणा के मूल स्रोत हैं, और लेखक जिनका
शिष्यत्व-लाभ करके गौरवान्वित हुआ है,
उन्हीं गुरुवर स्वर्गीय आचार्य
पं० रामचन्द्र शुक्ल
की परम पवित्र स्मृति में।

—लेखक

निवेदन

श्रद्धेय गुरुवर पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र, डॉक्टर जगन्नाथ प्रसाद जी शर्मा तथा पं० पद्मनारायण जी आचार्य का भी मैं परम कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे लिए सदैव अपनी उदारता का राजद्वार खुला रखा। जीवन के झंझावातों में अब भी मैं उनकी ओर उसी विश्वास से जाता हूँ "जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै।" अस्तु!

तब से वृक्षों में कई बार पात लगे और झड़ गये। प्रबन्ध अप्रकाशित ही पड़ा रहा। हाँ, सन्दूक खोल कर छठे-छमाहे देख अवश्य लेता था कि वह है भी या कहीं खो गया। आज से लगभग ३-४ वर्ष पूर्व 'जनवाणी' प्रकाशन (कलकत्ता) से उसके छपने की व्यवस्था भी हुई थी। किन्तु उनका सुझाव था कि मैं इसमें रश्यन, फ्रेंच व जर्मन आदि प्रसिद्ध यूरोपीय भाषाओं के प्रकृति-काव्य पर भी कुछ प्रकरण जोड़ दूँ। पर उक्त भाषाओं का तनिक भी ज्ञान न होने से तथा अंग्रेजी अनुवादों को टटोलते फिरने का कार्य बहुत श्रम-साध्य समझ कर मैंने इस झमेले में न पड़ अपनी सहज आनन्द-वृत्ति के साथ जीवन-प्रवाह में निर्विघ्न बहते चलने में ही श्रेय समझा। प्रबन्ध को कहीं से भी छूने का अर्थ था कंकड़ पानी में डालना, जो समस्त जल-प्रसार को तरंगित किये बिना नहीं रहेगा।

पर जीवन में चैन कहाँ! आखिर, दिल्ली-विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के अध्यापक मेरे स्नेही मित्र श्री विजयेन्द्र स्नातक, एम० ए०, शास्त्री ने फिर मुझे सोते से जगाया। उन्होंने प्रबन्ध को देखा और उनका आग्रह हुआ कि इस क्षेत्र में नवीन चिन्तनों के प्रकाश में मैं विषय को अद्यतन रूप में प्रस्तुत करूँ, किन्तु पिछले वर्षों में इस क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें निकल ही चुकी हैं, ऐसा सोच कर पहले तो किनारा ही काटना चाहा किन्तु न जाने किस स्वर्ण भोर की सुमन्द पवन-लहरी ने मुझे छू आ कि इस कार्य को मैंने उठा लिया। पिछले ५-६ वर्षों में मेरठ कॉलेज में एम० ए० कक्षाओं के अध्यापन-कार्य तथा अपने

चतुर्थ प्रकरण

हिन्दी-कविता में प्रकृति-चित्रण

(प्राचीन कविता)

[पृष्ठ ९२-११४]

वीरगाथा काल, भक्ति-काल (ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा कृष्णभक्ति शाखा, व रामभक्ति शाखा); रीतिकाल ।

पंचम प्रकरण

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण

[पृष्ठ ११५-१८८]

रति के क्षेत्र की व्यापकता, प्रकृति-प्रेम के पुनरावर्त्तन के कारण; प्रकृति-काव्य का विकास-क्रम विषय-निरूपण, आलम्बन (रूप-विस्तार, सूक्ष्मदर्शिता व तूलिका-कौशल, गति-विधि, वर्ण-भावना, नाद-व्यंजना गंध, स्पर्श, स्नेह-भावना, मनःस्थिति), उद्दीपन, रहस्य-भावना; मानवीकरण; पृष्ठभूमि व वातावरण; अलंकार; प्रतीक; तथ्य-प्रतिपादन व उपदेश ।

षष्ठ प्रकरण

उपसंहार

[पृष्ठ १८९-१९९]

सौंदर्य : कवि की साधना का माध्यम, प्रकृति-सौंदर्य की विशेषताएँ, प्रकृति का आध्यात्मिक महत्त्व, कवि-कर्म व काव्य का सर्वोच्च आदर्श; बाह्य प्रकृति का दान; अन्तः-प्रकृति की विकृति, संस्कार का सहयोग, जनता मे प्रकृति-प्रेम, जीवन म सौंदर्य की व्याप्ति ।

परिशिष्ट

ग्रन्थानुक्रमणिका

[पृष्ठ २००]

लोक मे प्रकृति की अनन्त सत्ता का जो विराट् रूप अंकित किया वही काव्य, साहित्य, संगीत, चित्र आदि विभिन्न ललित कलाओं द्वारा प्रस्फुटित हो कर हमारे रागात्मक जगत का अभिन्न अंग बन गया। फलत: विश्व साहित्य मे प्रकृति-वर्णन की अनिवार्यता स्वीकार की गई और मानव ने सौंदर्यवृत्ति के तोष के लिए ही नही वरन् अपनी आभ्यन्तर जिज्ञासा, वैचित्र्यजन्य कुतूहल, मोहक-विस्मय तथा आतंकमय आश्चर्य के शमन के लिए भी प्रकृति के विविध रूपों को काव्य मे ग्रहण किया।

वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन इस बात का साक्षी है कि उस काल के ऋषि-मुनियों ने विराट् चेतन-सत्ता के स्तवन-प्रसंग मे उषा सविता, वरुण, चन्द्र, मरुत आदि प्रकृति-तत्त्वों का प्रचुर परिमाण मे वर्णन किया है। उनके निरतिशय सौन्दर्य एवं देदीप्यमान तेज का वर्णन जिन प्रकृति-उद्गीथों मे किया गया है उसे पढ़ कर पाठक का मन केवल अभिव्यंजना की प्रौढ़ शैली एवं कल्पना की समृद्धि पर ही मुग्ध नही होता अपितु प्रकृति की व्यापक सत्ता तथा दुर्द्धर्ष क्षमता पर भी रीझ उठता है। उषासूक्त, वरुणसूक्त, मरुतसूक्त, वर्षासूक्त आदि में यद्यपि देवता परक दृष्टि से उनका स्तवन-वर्णन हुआ है तथापि इनके स्थूल दृश्य-रूप का सर्वथा तिरस्कार नही है। देवता-परक भावना से हटकर जब हम उनके सामान्य प्रकृति रूप का अवगाहन करते है तब ये सब पदार्थ अपने भौतिक स्वरूप मे हमारे हृदयाकाश मे भासमान हो उठते है। वेद संहिताओं के अतिरिक्त वैदिक वाङ्मय के अन्य अंग ब्राह्मण, उपनिषद और आरण्यक मे भी प्रकृति के प्रतीक, उपमान, रूपक आदि की भरमार है। रहस्य भावना के अंकन मे प्रकृति-प्रतीकों की जैसी सुन्दर योजना उपनिषदों मे हुई वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। प्राकृतिक वैभव का चित्रण भी इन ग्रन्थों मे विशेष रूप से हुआ है।

नहीं पाई जाती। उद्दीपन के फेर में पड़कर कवियों की भावना में परिवर्तन आ गया और वन, उपवन, गिरि, निर्झर, सर, सरिता, वर्षा, शरद, कमल, मालती, चन्द्र, चाँदनी, सभी पदार्थों में उन्होंने अपनी भावना का आरोप करना प्रारम्भ कर दिया। कहना न होगा कि यह परिपाटी शास्त्रीय रूढ़िवाद की दृष्टि से समीचीन भले ही प्रतीत हो किन्तु प्रकृति के वस्तुगत रूप के प्रति घोर उदासीनता की द्योतक है। रामायण में संश्लिष्ट प्रकृतिचित्रण के ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें प्रकृति को शुद्ध वस्तु रूप में स्वीकार करके कवि ने उसका आलम्बन-परक वर्णन किया है। मन्दाकिनी का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

"इस विचित्र पुलिनवाली रमणीय मन्दाकिनी को देखो जिसके तट पर हंस और सारस क्रीड़ा कर रहे हैं और जो पुष्पों से युक्त वृक्षों द्वारा शोभायुक्त लग रही है। मारुत के वेग से प्रताड़ित शिखरों से नृत्य-सा करता हुआ पर्वत (अपने ऊपर स्थित) अपने वृक्षों से नदी पर चारों ओर से पुष्प और पत्र विकीर्ण कर रहा है। वायु के झोंके से नदी के किनारे फैले हुए पुष्पों के ढेर को देखो और साथ ही उन पुष्पों को भी देखो जो उड़कर पानी में जा गिरे हैं—वे पानी में कैसे तैर रहे हैं।"[1]

उपर्युक्त वर्णन में मन्दाकिनी व पुलिन प्रदेश, पक्षियों के कल्लोल, क्रीड़ा, पुष्पित वृक्षों का आमोद-वितरण, पर्वत की शोभा, पुष्प और पत्रों

---

१ विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम्।
कुसुमैरुपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्॥
मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः।
पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम्॥
निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान्।
पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे॥

—वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड स० ९५, श्लोक ३-८

प्रदर्शित करने के लिए हमने इस प्रसंग को यहाँ संकेत रूप से उपस्थित किया है। शास्त्रकार भले ही प्रकृति को आलम्बन न माने, भले ही उनकी दृष्टि में प्रकृतिजन्य रस शुद्ध काव्य-रस की कोटि में न आए, किन्तु काव्य-रसिक, सहृदय कवियों के लिए तो प्रकृति रस भी शुद्ध रस बनकर ही आया है और आता रहेगा।

पालि, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी प्रकृति को ठीक वही स्थान मिला है जो वैदिक और संस्कृत साहित्य में है। पालि के जातक ग्रन्थों में वस्तु-परक वर्णनों का अभाव है क्योंकि उनमें लघु कथानकों का ऐसा जाल बिछा है कि प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों की अवतारणा के लिए अवकाश ही नहीं रहता। हाँ, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में शुद्ध प्रकृति-वर्णन के प्रसंगों की न्यूनता नहीं है। रूपक, उपमान और प्रतीक शैलियों द्वारा प्रकृति वर्णन की शैली इन दोनों भाषाओं में संस्कृत के समान ही मिलती है।

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत प्रकृति का जिस रूप में ग्रहण हुआ वह न तो मौलिक है और न उद्‌भावना की दृष्टि से ही नवीन कहा जा सकता है। आदिकाल के साहित्य में प्रकृति को उपयुक्त स्थान नहीं मिला। भक्तियुग में सूर और तुलसी ने प्रकृति का उपयोग आलम्बन और उद्दीपन दोनों दृष्टियों से किया। कबीर और जायसी ने रहस्य-भावना के वर्णन में प्रकृति के प्रतीक ग्रहण किये और अप्रस्तुत विधान की योजना करके प्रकृति को पर्याप्त स्थान दिया।[1] रीति-कालीन कवियों ने शास्त्रमर्यादा तथा नायिकाभेद के भँवर-जाल में फँसकर प्रकृति की क्षमता को सीमित बना दिया और प्रकृति के वस्तु-सौन्दर्य से आँख हटाकर उसे अपने मनोविकारों की पृष्ठभूमि में ला खड़ा किया। फलतः प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता विलीन हो गई और उसका अनवद्य सौन्दर्य उनकी दृष्टि में नायक या नायिका के मन को

१ देखिये—'कविता में प्रकृति चित्रण' पृष्ठ १०३-१०६

कल्पना पर कौन रसिक लुब्ध नहीं होता। टेनीसन की प्रकृति क्रीड़ा-वर्णन शैली पर कौन अनुरक्त नहीं होता। निश्चय ही अंग्रेज कवि प्रकृति को संवेदनशील और स्पन्दनशील मानकर ही उसका वर्णन करते है।[1] प्रस्तुत प्रबंध के लेखक ने जिन कवियों की उक्तियां उदाहृत की है उनके अतिरिक्त और भी प्रायः सभी कवि प्रकृति को काव्य का अनिवार्य वर्ण्य मानकर चले है। भारतीय काव्य शास्त्र की परिभाषा की तरह उन्होने प्रकृति को उद्दीपन की परिधि मे आबद्ध नही किया है। अतः उनका वर्णन संश्लिष्ट होने के साथ सचेतन और प्राणवान हुआ है।

संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त रूसी, फरासीसी, लैटिन फारसी, अरबी, चीनी, जापानी आदि भाषाओं मे भी प्रकृति-काव्य लिखा गया है जिसका वर्णन इस प्रबन्ध मे लेखक ने स्थानाभाव के कारण नही किया। लेखक का उद्देश्य काव्य और प्रकृति का संबंध प्रदर्शित करना है—विभिन्न भाषाओ के प्रकृति-चित्रण का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करना नहीं। अतः प्रबन्ध के कलेवर को सीमित रखने के लिए विविध भाषाओ के मोह को छोड़ना पड़ा।

कविता और प्रकृति के अभिन्न सम्बन्ध की स्थापना करने के लिए जिन आधारभूत मौलिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन लेखक ने किया है और जिन मूलभूत प्रश्नो को उठाया है, उनपर विचार करना भी हम आवश्यक समझते है। इस सैद्धान्तिक विवेचन को हम तीन-चार प्रश्नो मे बाटकर उनकी मीमांसा करेगे। पहला प्रश्न है प्रकृति को काव्य मे किस रूप मे ग्रहण किया जाए—आलम्बन या उद्दीपन विभाव मे से किसके अन्तर्गत रखा जाए? दूसरा प्रश्न—प्राकृतिक सौन्दर्य का अवस्थान कहां है—दृश्य मे या दर्शक के मन मे या उसकी भावना मे?

१ द्रष्टव्य — 'कविता में प्रकृति-चित्रण' पृष्ठ ८०—८१

इस प्रश्न का अवान्तर प्रश्न है कि — दृश्यमान् वस्तु तत्वतः सुन्दर है या वह कलात्मक कल्पना का फल है ? तीसरा प्रश्न है कि प्रकृति प्रेम को रस की दृष्टि से शुद्ध रसानुभूति माना जाए या केवल भाव या रसाभास समझा जाए ? चौथा प्रश्न – मानव और प्रकृति के मिलन का धरातल क्या है ? क्या मानवीकरण और प्रतीक विधान की अलंकारिक पद्धति स्वीकार करके हम प्रकृति को संवेदनशील बना देते हैं अथवा उसमें स्वयं प्रबुद्ध चेतना का वही रूप है जो जीव-योनि में होता है ? इन प्रश्नों के सिवा कुछ छोटे-मोटे और प्रश्न भी उठ सकते हैं जो साधारणीकरण प्रक्रिया को लेकर उत्पन्न होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन प्रश्नों पर गंभीर आलोचक की शैली से विचार किया है और उनकी युक्ति, तर्क, प्रमाण पुरस्सर स्थापित मान्यताओं को श्री खण्डेलवाल ने अपने प्रबन्ध के 'प्रकृति वर्णन में रस' शीर्षक अध्याय में संकलित कर दिया है।[1] उनकी मान्यताओं को इस प्रबंध के लेखक ने स्वीकार करके अपने मत की पुष्टि में प्रमाण माना है।

वही उसके काव्य में अभिव्यक्ति पाता है। सौन्दर्य को इसलिए वस्तु-परक मानने की अपेक्षा कुछ लोग मनस्-परक अधिक मानते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् क्रोचे ने अपनी पुस्तक 'एस्थिटिक्' में प्रतिपादित किया है कि प्रकृति की सौन्दर्य-भावना मनस्-परक है। प्रकृति स्वयं तो मूक और जड़ है; कलाकार जब तक उसे वाणी नहीं देता उसका सौन्दर्य मुखरित नहीं हो पाता। प्रकृति-सौन्दर्य को हृदयंगम करने के लिए केवल बाह्य दर्शन ही पर्याप्त नहीं, उसे भली भाँति समझने के लिए कलात्मक मानसिक स्तर का होना भी अनिवार्य है। वस्तु-परक दृष्टि से विचार करने पर वस्तु-दृश्य की अनिवार्यता भी सामने आती है और लगता है कि स्थूल रूप के बिना भाव की स्थिति कहाँ होगी। अतः वस्तु और भाव दोनों से सम्बन्धित और समन्वित रूप को ही सौन्दर्य की व्याख्या में रखना संगत होगा।

प्रकृति के विराट् सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कवि काव्य-रचना करता है, उसके सौन्दर्य को अपनी कल्पना और अनुभूति का विषय बनाता है। यह अनुभूति ही अभिव्यक्ति का विषय बनकर कविता का रूप धारण करती है। अतः ऐसे काव्य में प्रकृति को आलम्बन माना जायगा और कवि होगा उन भावों का आश्रय। आलम्बन रूप इस प्रकृति को हम वस्तु-आलम्बन और भाव-आलम्बन दो रूपों में देख सकते हैं।[1] जहाँ किसी घटना, स्थल, दृश्य आदि को स्पष्ट करने और कथानक आदि की पृष्ठभूमि तैयार करने में उसका उपयोग होता है वहाँ वस्तु-आलम्बन के रूप में उसका ग्रहण होगा। इन वर्णनों में कवि स्वतन्त्र शैली से वस्तु-रूपों को इतना प्रमुख स्थान देता है कि उनका रूप हमारे अन्तःकरण में रसानुभूति उत्पन्न करने में समर्थ होता है। भाव-आलम्बन में मानवीय भावों के समानान्तर प्रकृति के चित्रों को उपस्थित करना ही कवि को अभीष्ट होता है। प्रकृति के पुष्प, पत्र

१ देखिए—'कविता में प्रकृति-चित्रण' पृष्ठ २८-३१

विहंगों का कलरव, निर्झर का कल-कल नाद कभी नायक-नायिका के स्वागत करने के लिए भाव की पृष्ठभूमि में वर्णित होते हैं, कभी किसी अन्य भाव को व्यंजित करने के लिए। आलम्बन की यह स्थिति तभी स्वीकार की जायगी जब काव्य में दूसरा कोई आलम्बन न होगा या किसी अन्य परोक्ष आलम्बन का इस वर्णन से उद्दीपन रूप का सम्बन्ध न होगा। यदि किसी अन्य आलम्बन से इस वर्णन का सम्बन्ध हुआ तो वहाँ यह आरोपित उद्दीपन ही समझा जायगा।

साधारणतः भारतीय प्राचीन आचार्यों ने प्रकृति के इस आलम्बन रूप को स्वीकार नहीं किया और रस-सिद्धान्त के विवेचन में कहा कि प्रकृति के अचेतन होने के कारण, तज्जन्य भाव रस रूप में परिणत नहीं हो सकता। प्रकृति हमारे भावों के साथ आदान-प्रदान नहीं करती, उसके प्रति व्यक्त प्रेम भी एकांगी होता है। अतः वह भाव ही होगा, रस नहीं। हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन ग्रन्थ में स्पष्ट किया है "निरिन्द्रियेषु तिर्यगादिषु चारोपाद्रसभावाभासौ।" निर-वृक्षादिष्वीतिनिर्वेदादिसञ्चारी रसभावौ रसाभासभावाभासौ भवतः।"

चरम कोटि तक मानव-मन को उल्लसित और उद्‌बुद्ध कर देता है कि हम उसे एकदम भूल नही सकते। भक्तिरस की स्थापना करने वाले आचार्यों ने शान्त भाव को जिस आधार-भूमि पर प्रतिष्ठित किया उतनी ही सुदृढ भूमि पर सौन्दर्य-भाव को भी स्थापित किया जा सकता है। सौन्दर्यानुभूति और उसकी अभिव्यंजना दोनो ही काव्य के जीवित कहे जाते हैं। इस विषय मे पूर्व और पश्चिम दोनो देशो के काव्य शास्त्रियो का समान अभिमत है। "यदि तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाए तो ये (सौन्दर्य और शान्त भाव) रति या शम या निर्वेद के अन्तर्गत भी नही आ सकते। परन्तु इस ओर संस्कृत आचार्यो ने ध्यान नही दिया है। परिणाम स्वरूप इन दोनो भावो के आलम्बन रूप मे आने वाली प्रकृति साहित्य मे केवल उद्दीपन रूप मे स्वीकृत रही। मानव के मन मे सौन्दर्य की भावना सामंजस्यो का फल है और यह भाव रति स्थायी भाव का सहायक अवश्य है। परन्तु रति से अलग उसकी सत्ता न स्वीकार करना अतिव्याप्ति दोष है। उसी प्रकार शान्त केवल निर्वेद जन्य संसार मे उपेक्षा का भाव नही है, वरन् भावो की एक निरपेक्ष स्थिति भी है। सौन्दर्य भाव और शान्त भाव मनःस्थिति की वह निरपेक्ष स्थिति है जो स्वयं मे पूर्ण आनन्द है।"[1] यदि इस तरह इन्हे निरपेक्ष मान कर आनन्द की पूर्ण स्थिति मे स्थिर करके देखा जाए तो इनको रसकोटि मे रखना असंगत न होगा। प्राचीनो ने इस ओर ध्यान नही दिया यह आश्चर्य का ही विषय है। हिन्दी काव्य-शास्त्र मे तो प्रायः परम्परा-पालन मात्र हुआ है। अतः नूतन दृष्टि उन्मेष का अवसर ही कहाँ! फिर भी आश्चर्य की बात है कि आचार्य केशवदास ने प्रकृति को आलम्बन स्थानो मे परिगणित करने का साहस किया है। नायिका के साथ पृष्ठ भूमि रूप समस्त पदार्थों को केशव ने आलम्बन के अन्तर्गत स्वीकार करके प्रकृति की सीमा

---

१ देखिये—'प्रकृति और काव्य' (हिन्दी) डा० रघुवंश पृष्ठ १३७.

ही है कहीं-कहीं प्रकृति-दृश्य रूपों में भी इतना सामर्थ्य और बल दृष्टिगत होता है कि वे चेतन सत्ता के समकक्ष प्रतीत होते हैं। इस आरोपित चेतना को सहज चेतना न मानने पर भी उसकी उपेक्षा संभव नहीं है क्योंकि उसमें आनन्दानुभूति, रसानुभूति और तल्लीनता की कोई कोर-कसर नहीं है।

अलंकारवादियों ने प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति-वर्णन पर विचार नहीं किया किन्तु अलंकार योजना में अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत प्रकृति की उपादेयता स्वीकार की गई है। उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों में सादृश्य विधान के लिए जिन प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग हुआ है वह प्रकारान्तर से काव्य में प्रकृति की प्रयोजनीयता की स्वीकृति ही है। विद्यापति, जायसी, तुलसी आदि सभी ने अप्रस्तुत-विधान में उद्यान, चन्द्र, चांदनी, पर्वत, सर-सरिता, सागर आदि का प्रचुर प्रयोग किया है। अन्योक्ति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त आदि अलंकारों में प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को कवियों ने चुना है।[1] कबीर की अन्योक्तियों में उद्यान के विकसित फूलों की क्षणभंगुरता प्रसिद्ध ही है। अद्वैतभावना की सिद्धि के लिए 'काहे रे नलिनी तू कुम्हलानी तेरहि नाल सरोवर पानी' आदि उक्तियां प्रकृति उपमान की अप्रस्तुत योजना पर ही निर्भर हैं। प्रतीक-विधान के लिए भी प्रकृति के दृश्य पदार्थों का चयन आदिकाल से कवि करता आ रहा है। प्राचीन और नवीन कविता के प्रतीक-विधान में मौलिक अन्तर नहीं है, हां, समयानुसार प्रतीक अवश्य परिवर्तित होते रहे हैं। उषा, सन्ध्या, चन्द्र, चांदनी, आकाश, पर्वत, सागर, पवन सभी प्रतीक विभिन्न मनोदशा और स्थिति के द्योतक रहे हैं। छायावादी कविता की समृद्धि में तो इन प्रतीकों का विशेष योग रहा है। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति का चित्रण करते हुए

१ [illegible] —'हिन्दी में [illegible]' पृ० [illegible]

युग में तो प्रकृति पर्यवेक्षण से उद्भूत भाव-भावनाओं का जगत् और अधिक व्यापक हो गया है। संश्लिष्ट प्रकृति-चित्रों के साथ मानव की मनसा का आरोप, मानवीकरण की प्रकृति, नूतन प्रतीक-योजना और ध्वनि-नाद-दृश्य विधान आदि का इतना प्रचुर प्रयोग होने लगा है कि प्रकृति के बिना काव्य की कल्पना ही सम्भव नहीं। प्रबंध काव्यों के अतिरिक्त मुक्तक गीतों में भी प्रकृति के स्वतन्त्र रूप का वर्णन अत्यधिक मात्रा में होता है।

हर्ष और सन्तोष का विषय है कि प्रस्तुत प्रबंध में विद्वान् लेखक ने प्रकृति सम्बन्धी सैद्धान्तिक मीमांसा के साथ उसका व्यावहारिक प्रयोग पक्ष भी प्रस्तुत किया है। हिन्दी में अब तक इस विषय पर तीन-चार ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। किसी प्रकार की तुलना न करते हुए यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि स्पष्टता, सुबोधता, प्रांजलता और संक्षिप्तता की दृष्टि से यह प्रबंध अपना विशिष्ट स्थान रखता है। जो कुछ कहा गया है, युक्ति, प्रमाण, और तर्क की आधार-भूमि पर प्रतिष्ठित है। प्रौढ़ और गंभीर विचारों को उपस्थित करने में सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग है। अभिव्यंजना की दृष्टि से प्रबंध में कहीं भी शिथिलता और क्लिष्टता नहीं है। प्रबंध का कलेवर सीमित होने के कारण पुष्कल मात्रा में प्रमाण और उदाहरण नहीं दिये गये किन्तु आवश्यक उदाहरणों का अभाव नहीं है।

यह प्रबन्ध आज से लगभग दस वर्ष पूर्व लिखा गया था। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय की एम० ए० की परीक्षा में लेखक को इस प्रबंध में सर्वोच्च अंक प्राप्त हुए थे। उस समय तक हिन्दी में इस विषय पर कोई ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था, दुर्भाग्य से लेखक के पास यह लम्बे अर्से तक अप्रकाशित पड़ा रहा। प्रसंगवश लेखक महोदय ने मुझे इसे पढ़ने का अवसर दिया और मैंने इसकी उपादेयता समझकर लेखक महोदय से इसे प्रकाशित करने का आग्रह किया। हाँ, पुस्तक को

प्रथम प्रकरण

काव्य और प्रकृति का चिरन्तन सम्बन्ध

काव्य और प्रकृति

प्रकाश और स्वतन्त्रता मानवात्मा की अमर सम्पत्ति है। इस प्रकाश और स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति नाम रूपात्मक जगत् के बीच अनेक अवसरों पर अनेक रूपों में होती है। सत्त्वोद्रेक की पुण्य-दशा में आत्मा को जब अपनी अखण्डता, अनन्तता और एकरसता की मधुर अनुभूति होती है उस समय मनुष्य को वस्तु-जगत् का कण-कण एक उज्ज्वल और दिव्य दीप्ति से आलोकित-सा भासित होने लगता है। संसार का प्रत्येक रूप और व्यापार एक ही शक्ति से स्पन्दित और एक ही ज्योति से आलोकित होता हुआ जान पड़ता है। किन्तु आत्मा की यह प्रकाशानुभूति इतनी प्रबल, एकरस और अखण्ड होती है कि उसके आगे बाह्य जगत् की समस्त सत्ताएँ उसी आन्तरिक माधुर्य एवं ज्योति का ही प्रतिबिम्ब-मात्र जान पड़ती हैं। प्रकाश की शुद्ध अनुभूति आत्मा को ही होती है। सृष्टि के प्रारम्भ में,

अर्थात्, उस ब्रह्म मे सूर्य्य प्रकाश नही करता, चन्द्रमा और तारागण भी प्रकाश नही करते, न यह विजलियाँ उसका प्रकाश करती है, यह भौतिकाग्नि कहाँ प्रकाश कर सकता है, उस स्वयं-प्रकाश के पीछे ही सब प्रकाशित होते है, उसी के प्रकाश से सब तेजोमण्डल प्रकाशित होता है, वह स्वयं नही ।

यह आत्मा की शुद्ध प्रकाशानुभूति की अवस्था है । बाहर व्यक्त प्रकृति मे जो भी दीप्ति, कान्ति, प्रसन्नता, प्रकाश, उल्लास, सौन्दर्य्य, माधुर्य्य आदि का दर्शन होता है वह सब उसी की व्यक्त, भौतिक अभिव्यक्ति है । अतः बाह्य प्रकृति का सम्बन्ध हमारी आत्मा से है । 'रसो वै सः' (तैत्तिरीयोपनिषद्) । आत्मा रसमय है । आत्मा के प्रतिबिम्बस्वरूप प्रकृति भी रसमय है । रसानुभूति के नाते आत्मा और काव्य का सम्बन्ध नित्य है । * अतः प्रकृति और काव्य का सम्बन्ध भी सनातन और अखण्ड है ।

आदि-कवि वाल्मीकि की पावन वाणी प्राकृतिक परिस्थिति मे ही फूटी । सघन वनस्पति-आच्छादित पुण्य-सलिला तमसा के निभृत तट पर क्रौञ्चवध के अत्यन्त कारुणिक प्रसग पर "छन्दोमयी दैवी वाणी का आकस्मिक उच्चारण" हो गया—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

अपनी आत्मा की निर्मलता मे, वैदिक कवियो को भी बाह्य प्रकृति के कण-कण मे अजस्र मगल-वर्षा की अनुभूति हुई—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।
(ऋग्वेद १।९०।६)

* "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है......" 'प्रसाद' (काव्य कला और अन्य निबन्ध

प्राचीन यूनानी और रोमी काव्यों में संगीत की प्रधानता के साथ बाह्य प्रकृति का प्रचुर ग्रहण होता था। पिण्डारिक गीतों * (Pindaric Odes) में यह स्पष्ट लक्षित होता है। प्राकृतिक परिस्थितियों के बीच वन्य और ग्रामीण जीवन के सुन्दर चित्र उन काव्यों में भरे पड़े हैं। प्राचीन अंग्रेजी काव्य में भी यही प्रकृति-प्रेम अपने मूल रूप में दिखाई पड़ता है। शेक्सपियर प्रकृति की ललित गोद में पल कर ही मानव और प्रकृति के मार्मिक सम्बन्ध का रहस्य समझ सका—

Far from the sun and summer-gale
In thy green lap was Nature's darling laid......
To him the mighty Mother did unveil
Her aweful face : the dauntless child
Stretched forth his little arms, and smiled.
This pencil take (she said), whose colours clear
Richly paint the vernal year :

गिरि-प्रदेश में श्रद्धा से उनकी भेंट होती है। उस समय तक सृष्टि का विकास और सभ्यता का प्रवर्त्तन आदि कुछ नहीं होता। उस समय हम सृष्टि की आदिम अवस्था—प्रकृति और हृदय की मूल अनुभूति-शून्य अवस्था का ही परिचय पाते हैं। शनैः शनैः मनु बाह्य प्रकृति में नाना रूप-रंग तथा ध्वनियों का इन्द्रजाल अपने चतुर्दिक फैला हुआ पाते हैं। रात और दिन का नियमित परिचालन हो रहा है और इस प्रकार नवीन सृष्टि-चक्र चल पड़ता है—

> ओ नील आवरण जगती के दुर्बोध न तू ही है इतना,
> अवगुंठन होता आंखो का आलोक रूप बनता जितना।
>
> चल चक्र वरुण का ज्योति भरा व्याकुल तू क्यों देता फेरी,
> तारों के फूल बिखरते हैं लुटती है असफलता तेरी।
>
> अणुओं को है विश्राम कहा यह कृतिमय वेग भरा कितना,
> अविराम नाचता कम्पन है उल्लास सजीव हुआ कितना।
>
> आकाश रन्ध्र हैं पूरित से यह सृष्टि गहन सी होती है,
> आलोक सभी मूर्छित सोते यह आख थकी सी रोती है।
>
> सौन्दर्य मयी चञ्चल कृतिया बन कर रहस्य है नाच रही,
> मेरी आखों को रोक वही आगे बढ़ने में जाच रही।
>
> —कामायनी ('काम' सर्ग)

इस प्रकार हम अभिनव-माधुर्य्य-पूर्ण रूप-रंग के आकर्षण से पूर्ण प्रकृति को मनु के समक्ष फैली हुई पाते हैं। श्रद्धा के साथ रहते रहते मनु ज्यो ज्यों इस दृश्य-प्रसार पर चिन्तन करते हैं त्यों त्यो उनमें रागात्मिका वृत्ति अंकुरित व पल्लवित होती जाती है। यह रागात्मिका वृत्ति समय पाकर इतनी प्रबल हो जाती है कि उसके वेग मे वे सब कुछ सहने को तैयार हैं। सृष्टि के विकास की मूल प्रेरणा भी यही वृत्ति है, इसका भी रहस्यपूर्ण संकेत मिल जाता है—

> जो कुछ हो मैं न सम्हालूंगा इस मधुर भार को जीवन के,
> आने दो कितनी आती हैं बाधाएं दम संयम बन के। —कामयनी (काम सर्ग)

पक्षी, मेघ आदि की रचना उसके इसी मनोरंजन के मंगल उद्देश्य का परिणाम है । विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को भी जगत्पिता के इसी उद्देश्य की रहस्यपूर्ण झलक प्रकृति के क्षेत्र में मिली है—

"When I bring to you coloured toys, my child, I understand why there is such a play of colours on clouds, on water, and why flowers are painted in tints—when I give coloured toys to you, my child."

—Gitanjali, 62.

अर्थात्, हे बालक ! जब मैं तुझे रंगीन खिलौने लाकर देता हूँ तब मेरी समझ में आता है कि बादलों में और जल पर रंगों की यह क्रीडा क्यों होती है और फूल नाना प्रकार के रंगों में क्यों चित्रित हो रहे हैं !

यहाँ तक तो प्रकृति और मानव-हृदय की बात हुई । अब काव्य और प्रकृति के बीच संबंध-स्थापन के लिए यहाँ से दूर नहीं जाना होगा । काव्य का लक्ष्य मनुष्य की भावात्मक सत्ता पर अपना मार्मिक और गूढ प्रभाव डालना है, अतः कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह उन्हीं रूपों और व्यापारों की सुसम्बद्ध योजना काव्य में करे जो कि पाठक के हृदय का मार्मिक स्पर्श कर सके । मनुष्य का हृदय अनेक-भावात्मक है अतः उन अनेक भावों के संचरण के लिए कवि ऐसे लोक-सामान्य और विश्व-हृदय-स्पर्शी आलम्बनों को अपना विषय बनावे जो एक ओर तो उसके लोक-हृदय को पहचानने की शक्ति के परिचायक हों और दूसरी ओर पाठक के हृदय के साथ उनका पूरा पूरा साधारणीकरण हो । मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों की तृप्ति के लिए प्रकृति के पुनीत और रमणीय प्रांगण में जितना अक्षय भाण्डार भरा पड़ा है उतना और कहीं नहीं । प्रकाश और अंधकार, जन्म और मरण, सुख और दुःख, हास और अश्रु के नैसर्गिक द्वंद्व के बीच में से अव्यक्त काल से छूटी हुई सृष्टि बराबर अग्रसर होती जा रही है ।

इस प्रकार की स्वाभाविक रहस्य-भावना का स्वरूप एक विशिष्ट भौगोलिक प्रदेश में, नायक के हृदय में उपयुक्त मनोवैज्ञानिक भूमिका बना कर अंकित किया है। सामने फैले हुए अपार रूप मनु को कौतूहलमय और रहस्यपूर्ण लग रहे है और उनकी जिज्ञासा जग पड़ती है—

"महानील इस परम व्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते हैं सन्धान। × × ×"
हे अनन्त रमणीय, कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता।" ('आशा' सर्ग)

* * *

'सौंदर्यमयी चञ्चल कृतियां बन कर रहस्य हैं नाच रही।' ('काम' सर्ग)

इसी काव्योचित स्वाभाविक रहस्य-भावना का आदि स्फुरण हम अपने प्राचीन ऋषि-मुनियों में पाते है जब कि वे अपने चतुर्दिक फैले प्राकृतिक प्रसार पर गम्भीर चिन्तन करते हुए सृष्टि के रहस्य को समझने का प्रयत्न करते थे। आकाश, पृथ्वी, जल, पवन आदि सत्ताओं पर विचार करते करते उनके कंठ मे रहस्य-वाणी स्वभावत: ही फूट पड़ी थी—

"केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौ रुत्तरा हिता। केनेद मूर्ध्वं तिर्यक चान्तरिक्षं व्यचोहितम्" (ब्रह्मसूक्त ३)

अर्थात्, यह पृथ्वी किसने बनाई ? किसने ऊपर द्युलोक और स्वर्ग रचा है ? किसने यह अन्तरिक्ष, बीच का तिरछा और व्यापक आकाश रचा है ?

पद्मावती के सौन्दर्य्य का वर्णन करते करते जायसी की दृष्टि इस पार्थिव जगत् से उठकर अनायास ही लोकबाह्य पारमार्थिक अदृश्य सत्ता की ओर चली जाती है—

हीरा लेइ सो विद्रुम धारा। बिहंसत जगत होइ उजियारा॥
रवि, ससि, नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥

इस 'किस्से' में स्वाभाविक रहस्य-भावना और अद्वैत का स्वरूप अत्यन्त हृदयहारी है। एक दूसरी कविता में उन्होंने स्त्रीत्व का आध्यात्मिक आदर्श उपस्थित करने वाले नायक के द्वारा प्रकृति के क्षेत्र में प्रिया की मधुर वाणी कहाँ कहाँ से आती है इसका कथन करवाया है--

In solitudes,
Her voice came to me through the whispering woods
And from the fountains, and the colours deep
Of flowers which, like lips murmering in their sleep
Of the sweet kisses which had lulled them there,
Breathed but of her to the enamoured air,
And from the breezes, whether low or loud,
And from the rain of every passing cloud,
And from the singing of the summer-birds,
And from all sounds, all silence.

भावार्थ—निर्जन स्थानों के बीच मर्मर करते हुए काननों में, झरनों में, उन पुष्पों की पराग गन्ध में जो उस दिव्य चुंबन के सुख-स्पर्श-से सोए हुए कुछ बर्राते से मुग्ध पवन को उसका परिचय दे रहे हैं, इसी प्रकार मन्द या तीव्र समीर में, प्रत्येक दौड़ते हुए मेघखण्ड की झड़ी में, वसन्त के विहगमों के कल-कूजन में, तथा प्रत्येक ध्वनि में, और निस्तब्धता में भी मैं उसी की वाणी सुनता हूं।*

वर्ड्सवर्थ ने भी कहीं कहीं प्रकृति की अन्तरात्मा की ओर रहस्यपूर्ण संकेत किया है। उसके विषय में और अधिक, आगे अंग्रेज कवियों पर विचार करते समय कहा जायगा।

प्रकृति और सौन्दर्य

भगवान् की तीन विभूतियों—शक्ति, शील, और सौन्दर्य—में से

---

* भावार्थ सहित अंग्रेजी उद्धरण आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के 'जायसी ग्रन्थावली' नामक ग्रन्थ की भूमिका से उद्धृत।

देखा और कुंजों में रास रचाते कृष्ण को भी। रसखान को, सम्बन्ध भावना के कारण, 'करील के कुंज' भी इतने प्यारे लगे कि वे उस पर सब कुछ निछावर करने को राजी हो गए—

> कोटिक हौं कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं।

करीलों पर भी सहृदयों के द्वारा जब इतना ऐश्वर्य वारा जा सकता है तब फिर समस्त समग्र संसार की प्राकृतिक रूप-विभूति कितनी मूल्यवान् होगी, यह सौन्दर्य्य-दृष्टि-शील सहृदय ही समझ सकते हैं।

प्रकृति और आनन्द

काव्य की चरम साधना 'आनन्द' है। इसके लिए कवि और श्रोता दोनों को मनुज-प्रवर्त्तित कृत्रिम भेद-भावों से सर्वथा मुक्त होना वांछित है। ऐसा होने पर ही संसार का सच्चा सुख मिल सकेगा। जब मन में यह दिव्य अनुभूति होगी कि जिस प्रकाश से चन्द्रमा, सूर्य्य, बिजली, नक्षत्र, खद्योत आदि आलोकित हो रहे हैं उसी प्रकाश की किरण किलकते हुए शिशु के तथा उसकी ममतामयी माता के नेत्रों में फूटती है, उसी प्रकाश से दीपशिखा जलती है और वही प्रकाश देश के लिए उत्सर्ग होने वाले कर्मोन्साहपूर्ण वीर की आँखों में चमकता है। तभी जीवन के मूल में निवास करने वाली सत्ता का हमें भान होगा और हम आत्मिक आनन्द का अनुभव कर सकने में समर्थ होंगे। इसी प्रकार जिसकी भावना में यह बात बैठ जायगी कि जिस आत्मिक स्वतन्त्रता से पक्षी उड़ता है, समुद्र की लहर उमड़ती है, स्वेद-सिक्त श्रमजीवी कारखाने से लौट कर सन्ध्या की शीतल प्राणदा पवन का स्पर्श पाकर गा उठता है, बच्चा तितली के पीछे दौड़ता है, वह सब स्वतन्त्रता अपने मूल रूप में एक ही है। तभी आत्मा का आनंद झलकने लगेगा।

काव्य भाव-मार्ग से इसी आनन्द का उद्घाटन करता है। व्यष्टि रूप में यह प्रकाश और स्वतंत्रता भिन्न भिन्न रूपों में दिखाई पड़ती है पर समष्टि रूप में यह सब एक ही विश्वात्मा की विभूति है। तात्पर्य यह है कि अनेक भेद-भावों से ऊपर उठकर जिसका हृदय 'अभेद' अथवा 'एकत्व' तक इस भावना से पहुँच जायगा उसे ही सच्ची रसानुभूति होगी। यह रसानुभूति हृदय की उपर्युक्त उदार दशा के बिना सम्भव नहीं। हृदय की जिस उच्च अवस्था अथवा भूमिका में पहुँच कर सहृदय पाठक को यह आनन्दानुभूति अथवा रसानुभूति होती है उसे पातञ्जल-सूत्रों के भाष्यकर्ता भगवान् व्यास 'मधुमती भूमिका' कह कर उसका यों वर्णन करते हैं —

मनु ने कुछ कुछ मुसक्या कर
कैलास ओर दिखलाया;
बोले "देखो कि यहां पर
कोई भी नहीं पराया।

शापित न यहां है कोई
तापित पापी न यहां है;
जीवन-वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहां है।

सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सुख को दृश्य बनाता;
मानव कह रे! 'यह मैं हूँ'
यह विश्व नीड बन जाता।" ('आनन्द' सर्ग)

हृदय के 'आनन्द' के साथ बाह्य प्रकृति का सम्बन्ध

इसी पुण्य भूमि पर आकर जगत् के समस्त कल्याण, रस, आनन्द मुक्ति आदि 'एक' हो जाते हैं। काव्य का लक्ष्य आनन्द की यही 'मधुमती भूमिका' है जहाँ सहृदय पाठक कुछ काल के लिए अपने व्यावहारिक जीवन के "स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठ कर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर पहुँच जाता है" और उसे "जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार होता है तथा उसके हृदय में शुद्ध अनुभूतियों का सञ्चार होता है।" 'कामायनी' के इसी 'आनन्द' सर्ग में हमारे प्रस्तुत विषय—प्रकृति—का महत्व निरूपित हुआ है। अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्-व्यापी आनन्द-तरंग में प्रवाहित होने वाले उन यात्रियों—इड़ा, श्रद्धा, मनु आदि—की आन्तरिक भावना के मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण के लिए बाह्य प्रकृति के ललित-ऐश्वर्य्यपूर्ण वसन्त-विकास का ही रसात्मक वर्णन हुआ है। इससे स्पष्ट है कि हृदय के 'आनन्द' के साथ बाह्य प्रकृति का घनिष्ठतम सम्बन्ध है। ग्रन्थ के अन्तिम चरण "आनन्द अखण्ड घना था" में 'प्रसाद' जी ने एक ओर तो मानव-जीवन के चरम लक्ष्य का प्रतिपादन किया है और साथ ही काव्य के चरम लक्ष्य—रस अथवा आनन्द—की सिद्धि का भी परोक्ष रूप में संकेत कर दिया है।

साहित्य की वस्तु होगी, और न केवल उस दृश्य का जो मुझ पर प्रभाव पड़ा है उसकी व्यंजना मात्र ही। यदि मेरी अनुभूति काव्य कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है तो वह तभी होगी जब कि मैं उस दृश्य के दोनों पक्षों का चित्रण करूँ—जो कुछ भी वस्तु-व्यापार मैंने देखा और दूसरे, जो भी उसका मेरे हृदय पर प्रभाव पड़ा। इन दोनों के प्रौढ़ और सुष्ठु सामञ्जस्य के बिना मेरी अनुभूति कविता नहीं कहलाएगी।

"Descriptions, then, whether of physical beauty or of nature, are, as such, outside the limits of the art of poetry."* ......Lessing.

अर्थात्, शारीरिक सौन्दर्य्य अथवा प्राकृतिक सौन्दर्य्य के वर्णन काव्य-क्षेत्र के बाहर की वस्तुएँ हैं।

काव्य मे प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण पर तीन प्रकाण्ड पंडितों की सम्मतियाँ ऊपर उद्धृत हैं। तीनो के कथन परस्पर भिन्न भिन्न हैं। आचार्य्य शुक्ल जी ने अपने कथन में विभाव-पक्ष पर अत्यधिक ज़ोर दिया है। लेसिंग ने प्रकृति का तो क्या शारीरिक सौन्दर्य्य तक का वर्णन काव्य के लिए अनुपयुक्त ठहराया है। अबरकाम्बे ने मध्यवर्ती मार्ग का ग्रहण कर भाव-पक्ष और विभाव-पक्ष का समन्वय कर दिया है।

चित्रकला और कविता

चित्रकला और काव्य दोनों ही बाह्य प्रकृति को अपना विषय बनाते हैं। किन्तु चित्रकला और काव्यकला दोनों भिन्न कोटि की कलाएँ हैं। अतएव उन मे प्रकृति का ग्रहण भी भिन्न रूपों में होना चाहिए। यह भिन्नता किस रूप मे रहती है इसकी सम्यक् विवेचना करने के लिए चित्र और कविता मे अन्तर समझना आवश्यक है।

* W. Basil Worsfold: The Principles of Criticism: Page 109 (1923 edition)

हुआ और तीर अपने लक्ष्य की ओर गया।"*

लेसिंग ने इसे उत्कृष्ट काव्य-चित्र कहा है ! अब यदि इसे ही काव्य-चित्र कहने लगें और 'बिम्ब-ग्रहण' से यही तात्पर्य हो तब तो एक छोटे से व्यापार के वर्णन में कई पृष्ठ भर जायेंगे। बिम्ब-ग्रहण का तात्पर्य संश्लिष्ट चित्रण द्वारा पाठक अथवा श्रोता को वस्तु-स्थिति का मार्मिक प्रत्यक्षीकरण कराना है न कि किसी वस्तु का क्रमबद्ध वर्णन करना। जो हो, हम एक ही दृष्टिकोण पर आश्रित न रह कर व्यापक दृष्टि से काव्य-चित्र और वर्ण-चित्र का अन्तर समझने का प्रयत्न करेंगे।

चित्र और कविता में अन्तर

कविता और चित्र का स्थूल भेद दिग्दर्शित करते हुए वर्सफोल्ड (Worsfold) ने लिखा है—

"Broadly put, poetry represents what is in progression, painting, what is in juxtaposition."

(Principles of Criticism P. 107)

अर्थात्, कविता में वस्तुओं की गत्यात्मक स्थिति का चित्रण होता है और चित्र में स्थिर वस्तुओं का।

काव्य और चित्रकला में सब से स्थूल भेद यही हो सकता है कि एक की वर्ण्य-वस्तु (Matter) गत्यात्मक (Dynamic) होती है और दूसरे की स्थिर (Static)। किन्तु यह भेद अटल नहीं है। क्योंकि साधारणतः दोनों कलाओं के कलाकार आवश्यकतानुसार एक दूसरे [illegible] उपकरणों का उपयोग करते हैं। [illegible] एवं वस्तुओं का (जो [illegible]

काव्य प्रधानतः वस्तुओं की गत्यात्मक स्थिति का चित्रण करता है और चित्र स्थिर वस्तुओं का।

* The Principles of Criticism—(Worsfold) Page 107.

लेसिंग (Lessing) के विचार

Juxtaposition in space) से कोई मतलब नही। कवि और चित्रकार दोनों ही प्रत्यक्ष वस्तुओ के सूक्ष्म ब्योरे देने नही बैठते अपितु दृश्य के प्रति उनके हृदय मे जो भाव उठे है उन्ही का वे प्रधानता मेअभिव्यञ्जन करते है। कोई चित्रकार अपने चित्र मे यदि किसी क्रिया या वस्तु-गतिशीलता का चित्रण करता है तो वस्तुत: वह किसी क्षण-विशेष मे प्राप्त वस्तु की क्रिया चित्रित नहीं करता—जिस प्रकार कि किसी गतिशील मनुष्य का लिया हुआ फोटो। चित्रकार उस गति-विधि वाले क्षण विशेष का चित्रण गौण रूप मे ही करता है, प्रधानता तो उसकी भाव-व्यञ्जना की ही रहती है। उस दृश्य अथवा क्रिया से उसके हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ा है इसकी व्यञ्जना ही अलम् है। चित्रकार का यही असली काम है। वस्तु की स्थिरता अथवा गतिशीलता से उसका अधिक सरोकार नही, वे तो निमित्त मात्र हैं:—

"Bodies with their visible properties are the peculiar subjects of painting......actions are the peculiar subjects of poetry," and this because painting can only represent a single moment of time, while poetry, in describing bodies, must give in temporal sequence what has been received as a single-impression..... Art has nothing to do with sequence in time or juxtaposition in space. Painter and poet express, not the material detail of the practical world, but their own single states of mind. If the painter represents an action, he does not petrify one instant, as does the photograph of a moving person. He gives the whole movement, unifying in his representation a multitude of impressions. He gives, in fact, himself as

उपर्युक्त समीक्षकों के विचारो से परिचित हो कर अब हम पुनः इस विषय मे आचार्य्य शुक्ल जी के विचारों

पं० रामचन्द्र शुक्ल चित्र और कविता में अन्तर नहीं मानते

का अध्ययन करेंगे। शुक्ल जी ने शब्द-चित्र और वर्ण-चित्र मे विशेष अन्तर नहीं माना है। इसका प्रमाण उनके "काव्य मे प्राकृतिक दृश्य" नामक लेख में वाल्मीकि के प्रसग मे आया यह कथन पर्याप्त है—"और इधर के कवियो ने जहाँ परम्परा-पालन के लिए ऐसे चित्र खीचे भी हैं, वहाँ वे पूर्ण चित्र क्या, चित्र भी नही हुए है·· ····· चित्रकला के प्रयोगो द्वारा इस बात की परीक्षा हो सकती है·········वाल्मीकि के वर्षा-वर्णन को लीजिए, और जो जो वस्तुएँ आती जायँ, उनकी आकृति ऐसी सावधानी से अंकित करते चलिए कि कोई वस्तु छूटने न पावे × × ×" तात्पर्य्य यह कि शुक्ल जी वाह्य-प्रकृति का चित्रण ठीक वैसा ही चाहते है जैसा कि एक चित्रकार का। सम्भव है, कई विद्वान् शुक्ल जी के इस मत से सहमत न हो क्यो कि पिछले पृष्ठो मे हम शब्द-चित्र (कविता) और वर्ण-चित्र मे आलोचको द्वारा निरूपित भेद लक्षित करा चुके है। प्रकृति का चित्रण यथातथ्य ही होना चाहिए अथवा कुछ काट-छाँट के साथ—यह प्रश्न विवादास्पद है। तो भी शुक्ल जी के विचारो की विस्तृत मीमांसा करना आवश्यक है। हम उनके इस उदाहरण को पुनः दुहराते है—"काव्य मे कवि का लक्ष्य 'बिम्ब-ग्रहण' कराने का रहता है, केवल 'अर्थ-ग्रहण' कराने का नही। वस्तुओ के रूप और आसपास की परिस्थिति का ब्यौरा जितना ही स्पष्ट या स्फुट होगा, उतना ही पूर्ण 'बिम्ब-ग्रहण' होगा, और उतना ही अच्छा दृश्य-चित्रण कहा जायगा।" इस उद्धरण मे शुक्ल जी ने 'बिम्ब-ग्रहण' ही कवि का लक्ष्य माना है। इसके लिए कवि को आलम्बन का विशद वर्णन करना पड़ता है। "मैं आलम्बन मात्र के विशद वर्णन को श्रोता मे रसानुभव

तात्पर्य्य यह कि कवि, फोटोग्राफर और चित्रकार में उच्च कोटि का कलाकार है अतः हम उसे केवल किसी दृश्य का अनुकरण मात्र करता हुआ पा कर ही सन्तुष्ट नही हो सकते। शुक्ल जी कवि को 'भाव-योगी' समझते है अत कवि के लिए समस्त जगत् भाव-मय ही है। जब कवि किसी विशेष दृश्य का चित्रण करने बैठेगा तब वह उस दृश्य को अपनी तत्कालीन मानसिक दशा मे ही देखेगा और हृदय के भावो की व्यजना भी साथ ही साथ करता जायगा। अन्यथा उसके इस परिश्रम मे रस ही क्या रहेगा ? फिर फोटोग्राफर और चित्रकार तथा कवि मे अन्तर ही क्या रह जायगा ? अतः यदि कवि का आसन शेष दोनो से उच्च है तो हम कवि से अवश्य ही उसके हर्ष आदि के उद्गारो की व्यजना की आशा रखते हुए उसे केवल किसी दृश्य की नकल मात्र करते देखने से ही सन्तुष्ट नही हो सकते। वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) ने भी अपने कविकर्म (Requirements of the poet) नामक लेख मे निरीक्षण और वर्णन को प्रधान माना है किन्तु आगे चलकर उन्होने सशोधन और परिवर्द्धन आदि को भी दृश्य-चित्रण का एक अग माना है—

वर्ड्सवर्थ, शेली और अरबक्रोम्बे के विचार

"Fourthly, Imagination and Fancy,—
to modify, to create and to associate"
—Wordsworth (Requirements of the poet)

अर्थात्—परिशोधन कल्पनानुकूल नव निर्माण और सम्बन्ध स्थापन भी आवश्यक कवि कर्म है।

(*Continued from page No 23*)

It is the function of the artist to particularize that one tree How does he do it ? Not through the peculiarity which is the discord of the unique, but through the personality which is harmony Therefore he has to find out the inner concordance of that one thing with its outer surroundings of all things"

—Personality (1948) Page 23-24

छोड़ा जा सकता। पाठक में भी इस कल्पना कि आवश्यकता इसलिए मानी गई कि कवि जहाँ जहाँ अनावश्यक व्यौरे छोडता चलता है वहाँ वहां पाठक चित्र पूरा करने के लिए अपनी ओर से भी कल्पना का योग देकर चित्र पूरा करता चले। यहाँ हमें इस बात का भी संकेत मिल जाता है कि कवि को दृश्य के आवश्यक व्यौरों का ही पूरा पूरा चित्रण करना चाहिए; शेष व्यौरों को, पाठक की कल्पना पर विश्वास रख कर, छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने मे पाठक की कल्पना को भी व्यायाम मिलेगा। यदि पाठक काव्य के प्रत्येक व्यौरे को निष्क्रिय होकर ग्रहण करता चलेगा और उसकी कल्पना भी रस-प्रतीति के लिए अपनी ओर से सक्रिय अथवा प्रयत्नशील न रहेगी तो उसे काव्य का पूरा पूरा आनन्द मिल ही न सकेगा। तात्पर्य्य यह कि दृश्य-चित्रण मे कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह वर्ण्य-वस्तु अथवा दृश्य के आवश्यक व्यौरों का यथातथ्य, विशद और सश्लिष्ट चित्रण करता हुआ पाठक की कल्पना के व्यायाम के लिए भी अवसर छोडता चले तथा आवश्यकतानुसार अपने भावों की व्यजना भी करता चले। ऊपर शेली अवरक्राम्बे आदि के विचारो द्वारा दृश्य-चित्रण मे भाव व्यञ्जना का स्थान और महत्त्व बताया किया जा चुका है। शुक्ल जी ने भी आगे चल कर अत:करण की झलक दिखाना कुछ मान ही लिया है।

दृश्य चित्रण में परिवर्तन अथवा संशोधन की प्रेरणा

दृश्य के गम्भीर निरीक्षण से, सर्व प्रथम, कवि की कल्पना जागृत होगी और शनैः शनैः वह अप्रस्तुत अथवा परोक्ष रूपों की योजना मे प्रवृत्त होगी। ऐसा होने से एक मनोवैज्ञानिक परिणाम यह होगा कि कवि के मन मे, नए-नए रूपों के आने से, सामने दिखाई पड़ने वाली वस्तुओं मे भी, कल्पना म आए हुए अप्रस्तुत रूपों के अनुसार, कुछ परिवर्त्तन अथवा संशोधन की प्रेरणा होगी। कहने की आवश्यकता

"संध्या का समय है। सामने बाईस वृक्ष खड़े है पर आगे के वृक्ष सुदूर धूमिल दिगन्त में लीन होने से गिनने में नहीं आते। आकाश में, सुनहली किरणों से रञ्जित नीले-पीले बादल नीरव-निश्चल से खड़े है। बाई ओर नीम का एक वृक्ष खड़ा है जिसकी एक शाखा पर पक्षियों के पानी पीने के लिए मिट्टी का एक ढीवरा लटका हुआ है और कुछ दूरी पर एक फूटी हँडिया भी औंधी पड़ी है जिस पर कुछ मिट्टी पुती हुई है। पीछे से बैलगाड़ी के चलते हुए बैलो की घण्टी की आवाज और पहियों की घर्-घर्-ध्वनि आ रही है। अब अरहर के खेतों के बीच की पगडंडी से निकल कर आता हुआ एक ग्रामीण दिखाई दे रहा है जिसके हाथ मे एक मिट्टी के तेल की बोतल है। ऊपर आकाश मे पक्षी चहचहा रहे है। विजन प्रान्त की नीरवता अत्यन्त मधुर है। मैं इस ऊंचे टीले पर बैठा हूँ। अब समय बहुत हो गया है, पेन्सिल भी टूट गई है, चलना चाहिए।"

ऊपर का दृश्य-वर्णन और भाव-व्यजना है तो यथातथ्य और स्वाभाविक, किन्तु यह चित्र काव्योपयोगी होगा, इसमे सन्देह ही है। यह चित्र काव्योपयोगी नही क्योंकि ऐसा ब्योरा फोटो में ही आता है, काव्य मे नहीं। इसका काव्योपयोगी अश इतना ही होगा—

"संध्याकालीन सूर्य्य की स्वर्ण-रश्मियो से पीले पड़े हुए शान्तिपूर्ण निर्जन वनस्थली के खेत, वृक्ष, पौदे इत्यादि अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं और सुदूर पश्चिम दिगन्त की तरुमाला के पीछे अस्त होते सूर्य्य की किरणो से चुम्बित बादल निश्चल हो कर सो रहे हैं। पक्षी चहचहा रहे है। वन-पथ से जाती हुई बैलगाड़ी की घंटियो की मञ्जुल ध्वनि और पहियो की घर् घर् आवाज वनस्थली की शांति को और भी गम्भीर बना रही है।" कहने की आवश्यकता नही कि उपर्युक्त चित्र पिछले विवरण का परिमार्जित काव्योचित रूप है।

अन्त मे उपर्युक्त सब विवाद का अन्त यो कह कर किया जा

अनुसार अचेतनत्व के प्रति निश्चिति का भाव रस-रूप में परिणत नहीं हो सकता। देव-विषयक रति रस-रूप में परिणत हो सकती है या नहीं और वह भक्ति-रस का स्थायी भाव हो सकती है या नहीं, इसका आचार्यों ने युक्तियुक्त उत्तर दिया है। मन के अनुकूल जो स्वत: बिना किसी प्रेरणा के प्रवृत्ति होती है उसे रति कहते हैं। अकेली वह स्थायी भाव होकर रस-रूप में परिणत नहीं हो सकती। इष्टदेव परोक्ष हैं। भावना में ही वे प्रत्यक्ष रहते हैं। देवताओं के विषय में परोक्षत्व का हमें निश्चय है अत: उनके विषय में हमारा रतिभाव और भक्ति-भाव होगा। उनकी कल्पना हम मन में ही कर सकते हैं, उन्हें हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। उनके प्रति हमारी प्रत्येक चेष्टा काल्पनिक ही होगी। देवता के प्रति हमारे हृदय में अनुभूति तो होगी पर हृदय में कोई संस्कार नहीं होगा क्योंकि उनका हमें कोई चाक्षुप अथवा इन्द्रियज ज्ञान नहीं है। भावना में हम उनका आह्वान कर सकते हैं और कल्पना में उनका कोई रूप भी खड़ा कर सकते हैं किन्तु बिना किसी पूर्व-प्रत्यक्ष अथवा साक्षात्कार के हमारे मन में उनके प्रति कोई संस्कार नही होगा। इसलिए हमारा उनके साथ तादात्म्य भी नही होगा और न पूरा-पूरा साधारणीकरण ही होगा। प्रत्यक्ष अनुभव, अनुमान आदि के बिना संस्कार नही होता और बिना संस्कार के रस की अनुभूति नही हो सकती। किंतु राम प्रत्यक्ष थे। उनकी प्रत्यक्षता का हमें आप्त वाक्य या शास्त्र-प्रमाण से निश्चय है, देवताओं का नही। वाल्मीकि के वर्णन के आधार पर हमें राम की प्रत्यक्षता का ज्ञान होता है क्योंकि वे समकालीन ही थे ऐसा माना जाता है। जब राम की वीरता का वर्णन हम किसी काव्य में पढ़ते हैं तो उनकी प्रत्यक्षता की निश्चिति के आधार-स्वरूप उनके प्रति हमारे संस्कार उद्‌बुद्ध हो जाते है तथा वे हमें प्रत्यक्ष से लगते हैं, इसीलिए उनके साथ हम उस काव्य द्वारा तादात्म्य का पूर्ण अनुभव करते है और हमे रस की अनुभूति होती है। साधारणीकरण पूरा

नहीं जा सकता। अतः देवता के पक्ष में प्रत्युत्तर (response) और आश्रय अथवा कवि के पक्ष में संस्कार न होने से रसानुभूति असम्भव है, भावानुभूति चाहे हो।

यही बात प्रकृति के विषय में भी लागू होती है। भारतीय चिंता में प्रकृति जड़ है। हम चाहे यों कह दें कि फूल, पेड़, पौदे इत्यादि में हम सन्देश सुनते हैं पर वास्तव में वे बोलते नहीं। यह तो हमारी भावना और कल्पना के द्वारा उन पर किया गया आरोप मात्र है। प्रकृति के प्रति हमारे हृदय में संस्कार भले ही हों किन्तु उसके जड होने के कारण कोई प्रत्युत्तर उसकी ओर से हमें नहीं मिलता। इसके बिना रसानुभति असम्भव है। प्रकृति के प्रति प्रेम उसमें अचेतनत्व होने के कारण, वह तीव्रता नहीं प्राप्त करता कि उसके प्रति उद्बुद्ध भाव रस कोटि को पहुँच सके। अतः प्रकृति के प्रति प्रेम केवल भाव ही होगा, रस नहीं। अचेतनत्व और परोक्षत्व का निश्चय होने के कारण भगवान् भरत मुनि तथा उनके बाद के आचार्य्यों ने भी देवता-विषयक रति को रस नहीं माना, भाव मात्र ही माना है। प्रकृति से भी प्रत्युत्तर नहीं मिलता अतः वह भी जड है। इसी जड़ता के कारण आश्रय व आलम्बन के बीच जीवित सम्पर्क स्थापित नहीं होता, भाव में तीव्रता नहीं आती और रसानुभूति नहीं होती।

प्रकृति के संश्लिष्ट और विशद चित्रण में यदि ध्वनि है तो उसे हम वस्तु-ध्वनि ही कह सकते हैं, रस-ध्वनि नहीं क्योंकि प्रकृति स्वयमेव जड़ है। प्रकृति-वर्णन ध्वनि-काव्य तभी कहला सकता है जब कि उसमें रस-व्यंजना होगी।

यह है प्राचीनों का मत। उपर्युक्त विवेचन से प्रकृति के प्रति आचार्य्यों का दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ होगा। वे तो प्रकृति-वर्णन में रस नहीं मानते किन्तु शुक्ल जी उसमें रस मानने के पक्ष में कुछ पुष्ट तर्क उपस्थित करते हैं। उनका विवेचन अत्यन्त पुष्ट आधार पर खड़ा है

प्रदर्शन से हमारी भीतरी प्रकृति का जो अनुरंजन होता है, वह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इस अनुरंजन को केवल किसी दूसरे भाव का आश्रित या उत्तेजक कहना अपनी जड़ता का ढिंढोरा पीटना है..."

प्रकृति-वर्णन में रस क्यों नहीं माना गया, इसका कारण शुक्ल जी आगे बतलाते हैं--"रीति-ग्रंथों की बदौलत रस-दृष्टि परिमित हो जाने से उसके संयोजक विषयों में से कुछ तो 'उद्दीपन' में डाल दिए गये और कुछ 'भावक्षेत्र' से ही निकाले जा कर 'अलंकार' के हाते में हाँक दिए गये। इसी व्यवस्था के अनुसार वस्तुओं के स्वाभाविक रूप और क्रिया का वर्णन 'स्वभावोक्ति अलंकार' हो गया।' प्रकृति के प्रेम की स्वाभाविकता पर वे लिखते हैं—"मनुष्य शेष प्रकृति के साथ अपने रागात्मक संबन्ध का विच्छेद करने से, अपने आनन्द की व्यापकता को नष्ट करता है। बुद्धि की व्याप्ति के लिए मनुष्य को जिस प्रकार विस्तृत और अनेक-रूपात्मक क्षेत्र मिला है, उसी प्रकार 'भावों' (मन केवेगों) की व्याप्ति के लिए भी। अब यदि आलस्य या प्रमाद के कारण मनुष्य इस द्वितीय क्षेत्र को संकुचित कर लेगा, तो उसका आनन्द पशुओं के आनन्द से विशाल किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता। अतः यह सिद्ध हुआ कि वन, पर्वत, नदी, निर्झर, पशु, पक्षी, खेती-बारी इत्यादि के प्रति हमारा प्रेम स्वाभाविक है, या कम से कम वासना के रूप में अन्तःकरण में निहित है।"......"चमत्कारवादियों की यह समझ ठीक नहीं कि जहाँ असाधारणत्व होता है, वहीं रस का परिपाक होता है, अन्यत्र नहीं।"

"प्रेम की प्रतिष्ठा दो प्रकार से होती है—(१) सुन्दर रूप के अनुभव द्वारा, और (२) साहचर्य द्वारा। सुन्दर रूप के आधार पर जो प्रेम भाव या लोभ प्रतिष्ठित होता है, उसका हेतु संलक्ष्य होता है; और, जो केवल साहचर्य के प्रभाव से अंकुरित और पल्लवित होता है,

विवेचन हुआ। अब हम थोड़ा, उनके हृदय-पक्ष में भी, प्रकृति को देखेंगे। हिन्दी साहित्य में संभवतः शुक्ल जी ही पहले कवि है जिन्होंने प्राचीन कवियों की तरह प्रकृति का स्वतन्त्र आलम्बन के रूप में विशद चित्रण किया। इस दृष्टि से उनकी प्रकृति-दृष्टि पर भी कुछ लिखना आवश्यक है।

हृदय और बुद्धि का जैसा समन्वय हमें शुक्ल जी में मिलता है वह पूर्ण श्लाघ्य है। उनके गम्भीर विचारात्मक लेखों में उनका बुद्धि-पक्ष ही प्रबल दिखाई पड़ता है किन्तु उनमें भी स्थान स्थान पर उन्होंने मनुष्येतर बाह्य प्रकृति के नाना रूपों के प्रति जो अपना गूढ़ अनुराग व्यंजित किया है उससे उनका सूक्ष्म और विस्तृत प्रकृति—पर्यवेक्षण लक्षित होता है। प्रकृति के प्रति उनके इस अनुराग का प्रमाण हमें इसी से मिल जाता है कि उन्होंने प्रकृति-वर्णन में, अपनी बौद्धिक प्रतिभा और सहृदयता के बल से, रसानुभूति मानी थी। हमारे चतुर्दिक फैले रूप-व्यापारों की साधारणता और असाधारणता—दोनों ही उन्हें रस-मग्न करती थीं। प्रकृति के प्रति शुक्ल जी की सी निश्छल अनुराग और मोद भरी दृष्टि हिन्दी साहित्य में कुछ अन्य प्रतिभा-सम्पन्न कवियों को छोड़कर और किसी को न मिली। साहित्य में प्रकृति का वर्णन वे उसी पद्धति पर चाहते थे जैसा कि प्राचीन संस्कृत कवियों ने किया था। इसमें वे वाल्मीकि कालिदास भवभूति तथा अंग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ आदि को आदर्श मानते थे। वे प्रकृति की इनी गिनी, रंगीन और भड़कीली चीजों का ही नाम लेकर सन्तुष्ट होने वालों में से नहीं थे। वे प्रकृति के सच्चे उपासक थे। कंकरीले टीलों, ऊसर पटपरों पहाड़ के ऊबड़-खाबड़ किनारों बबूल-करील के झाड़ों पेड़-पौधों पशु-पक्षियों नदी नालों पर्वत मैदानों जंगलों, कछारों, खेतों खेतों की नालियों घास के बीच की डुर्रियों, हल-बैलों झोंपड़ों [illegible] से लगे हुए किसानों आदि सभी रूपों में शुक्ल जी की भावना

कटावदार पौदे खड़े थे जिनके पीले फूलों के गोल सम्पुटों के बीच लाल लाल बिन्दियां झलकती थीं।"

अपने "काव्य में प्राकृतिक दृश्य" नामक लेख में वे एक स्थल पर लिखते हैं—"सीतल गुलाब जल भरी चहबच्चन में" बैठे हुए कवि जी की अपेक्षा तलैया के कीचड़ में बैठकर जीभ निकाल निकाल हांपते हुए कुत्ते का अधिक प्राकृतिक व्यापार कहा जायगा। इसी प्रकार शिशिर में दुशाला ओढे "गुलगुली गिल में, गलीचा" बिछाकर बैठे हुए रईस से धूप में खपरैल पर बैठी बदन चाटती हुई बिल्ली में अधिक प्राकृतिक भाव है। पुतलीघर में ऐंजिन चलाते हुए देशी साहब की अपेक्षा खेत में हल चलाते हुए किसान में अधिक स्वाभाविक आकर्षण है। विश्वास न हो, तो भवभूति और कालिदास से पूछ लीजिए।'

ऊपर के उदाहरणों से पता लगेगा कि शुक्ल जी के पास प्रकृति-दर्शन की एक अत्यन्त निर्मल और प्रकृत दृष्टि सुरक्षित है। यही सीधी-सादी प्रेम-दृष्टि चतुर्दिक फैले सामान्य रूपों में भी हमें अद्भुत दीप्ति और अभिनव सौन्दर्य्य खोज देती है, "कुछ काल के लिए सभ्यता के कृत्रिम बन्धनों से मुक्त कर, हृदय को शुद्ध भूमि पर ले जाती है और व्यवहारिक जीवन के स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से हटाकर शेष-सृष्टि के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है।" हृदय का व्यापक प्रसार कराने वाली यह दृष्टि जिसे जितनी ही अधिक ममता और स्वाभाविकता के साथ प्राप्त है उतना ही वह सुखी और सुखी है। जिस परम भावुक और रस सिक्त व्यक्ति की दृष्टि, सत्यानासी के फूल और उनमें झलकती लाल बिन्दियों, सुर्खी-चूने को फोड़ कर निकलते हुए हरे पत्तों, तलैया के कीचड़ में बैठ कर जीभ निकाल कर हांपते हुए कुत्तों और धूप में खपरैल पर बैठी बदन चाटती हुई बिल्लियों में मधुर सौन्दर्य ढूंढ निकालती है वह, अपने गांव के पास से बहते हुए नाले के किनारे उगने वाली झाड़ी या घास

कविता मे रहस्य-भावना का विकास नही हुआ। इतना ही नही जिज्ञासा व कौतूहल की स्वाभाविक व काव्योपयोगी भावना भी देखने को न मिली। फिर भी वाल्मीकि, कालिदास व भवभूति जैसे रससिद्ध प्रकृति-प्रेमी कवियो ने प्रकृति का भरपूर सौदर्य देखा व उसका चित्रण किया। उन्होने प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन व अलकार रूप मे ग्रहण कर उसका प्रचुर प्रयोग किया। उत्तरकालीन सस्कृत-साहित्य म कविता राजदरबारो की ही वस्तु रह गई। प्रकृति के मुक्त क्षेत्र म जाकर स्वय उसका दर्शन करना प्राय: बद हो गया अत: उसके प्रति स्वतन्त्र अनुराग बढने का अवसर कहा था! प्रकृति केवल उद्दीपन की ही वस्तु रह गई। आलकारिको ने वहा से उपमान मात्र ही ढूढे। उपदेशक कवियो ने प्रकृति के दृश्य-चित्रण के माध्यम से उपदेश मात्र दिये। बस! प्रकृति की दृष्टि से हिन्दी का वीरगाथा काल शून्य-सा है। भक्तिकाल मे सगुणभक्ति-धारा की कृष्णभक्ति शाखा म नायक के प्रकृति मे घनिष्टतम रूप मे सम्बद्ध रहने के कारण तथा निर्गुण-भक्ति धारा की प्रेमाश्रयी शाखा म रहस्य-भावना व विश्व-व्यापी अलौकिक प्रेम व्यजना के हेतु प्रकृति का प्रचुर प्रयोग हुआ किन्तु रामभक्ति शाखा व कबीर की निर्गुण धारा मे प्रकृति का अत्यल्प प्रयोग हुआ। रीति-काल मे तो प्रकृति केवल उद्दीपन की वस्तु ही रही, भोगियो के सुख-दुःख की व्यजना मे परिचारिका की तरह। उसका उपयोग अलकार-विधान व उपदेशात्मकता के लिए भी हुआ। किन्तु आधुनिक काल मे प्रकृति का बहुमुखी व सर्वांगीण प्रयोग हुआ है और वे प्रवृत्तिया दिखाई पडी है जिनके स्वरूप पर विचार करके प्रकृति-वर्णन में रस की सभावना पर बाध्य होकर विचार करना ही पडता है। काव्य मे प्रकृति के जितने भी उपयोग है उनके मूल मे है प्रकृति के प्रति सहज स्वाभाविक व मौलिक प्रेम। कवि के इसी मौलिक प्रेम के कारण अन्य प्रकार के उपयोग सार्थक सबल व प्राणवान होते है। अत: इस पर ध्यान रखकर ही इस सम्बन्ध मे यथार्थ विचार हो सकता है।

आप कहेंगे, चेतना का तो आरोप मात्र होता है, वस्तुतः प्रकृति जड़ ही है। उत्तर मे निवेदन है कि प्रकृति को जड़ विज्ञान ही मानता है, काव्य नही। प्रकृति की ही क्या बात, विज्ञान तो फूल व मनुष्य दोनों को ही भौतिक परमाणुओं का संघात मात्र ही कहेगा!

स्वयं कालिदास तक कहते है—

धूमज्योतिः सलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः
सदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
—मेघदूत (पूर्वमेघ, ५)

पर काव्य का सारा व्यापार कल्पना व भाव के आधार पर चलता है। उसमे गणित या पदार्थ-विज्ञान की तरह वस्तु-सत्य उतना प्रधान नही होता जितना भाव-सत्य या कल्पना-सत्य।

कल्पना का सत्य कितना सत्य और मधुमय होता है—

आह कल्पना का यह सुदर जगत मधुर कितना होता।
सुख स्वप्नों का दल छाया में पुलकित हो जगता-सोता॥
—'कामायनी'

इसी तथ्य को आत्मसात् कर आधुनिक कवियों ने प्रकृति म चेतना की पूर्ण प्रतिष्ठा कर दी है और हाड-मांस के व्यक्ति की ही तरह उसके साथ कल्पना-जगत् मे जीवित आत्मिक सम्पर्क स्थापित कर लिया है।

सिंधु-सेज पर धरावधू अब,
तनिक संकुचित बैठी सी।
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में,
मान किये सी, ऐठी सी॥
—'प्रसाद' (कामायनी)

फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार,
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना मे,
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार।
—'पंत' (बादल)

होता है, जो हमारे गूढ़तम रतिभाव का स्वतन्त्र आलम्बन है, जो अनादि काल से हमारे हृदय की गभीरतम जड़ों में रस सींचती आई है, हमारे जीवन का सारा स्नायु-जाल जिसके रस से अभिसिंचित है उसके वर्णन में 'रस' की सत्ता न मानना हमारी रूढ़ि-प्रियता व संकीर्ण मनोवृत्ति के अतिरिक्त और क्या कहा जाय। वस्तुतः आज हमारे अनेक विकासशील व प्रगतिकामी समीक्षक 'प्रकृति-रस' की स्वीकृति के पक्ष में पूरे पूरे झुके हुए जान पड़ रहे हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के विचार ऊपर व्यक्त किये ही जा चुके हैं। बाबू गुलाब राय अपने 'काव्य में प्रकृति-चित्रण' नामक निबन्ध में लिखते हैं—"शास्त्रीय पद्धति केवल दाम्पत्य रति को ही गौरव पूर्ण स्थान देती है किन्तु जिस प्रकार वात्सल्य ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर लिया है उस प्रकार प्रकृति भी अपना स्वतन्त्र आस्तित्व-स्थापन कर अपना एक विशेष रस बना लेगी या रति की शास्त्रीय परिभाषा को कुछ शिथिल करना पड़ेगा। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र अपने 'वाङ्मय विमर्श' में लिखते हैं—"शास्त्रों में रस प्रक्रिया का विवेचन करते हुए प्राकृतिक विभूतियाँ शृंगार के उद्दीपन के रूप में रख दी गई हैं। जिस प्रकार व्यक्ति या वस्तु के मेल में आने से नाना प्रकार के भावों का उद्रेक होता है उसी प्रकार स्वच्छंद प्रकृति के संपर्क में आने से जो भाव जगता है उसका कोई पृथक नामकरण भी नहीं किया गया। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि प्रकृति के वर्णन से किसी प्रकार का रस व्यंजित होने की संभावना ही नहीं। यदि भानुभट्ट 'मायारस' की कल्पना कर सकते हैं तो 'प्रकृतिरस' की कल्पना प्रकृति-प्रेमियों के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं। संसार में लोकेषणा, धनेषणा, पुत्रेषणा नामक वांछाओं की पूर्ति में प्रवृत्त रहने वाले मायारस के आश्रय होते हैं। प्रकृतिगत भाव की सीमा इससे भी विस्तृत है। संसारी और वीतराग सभी प्रकृति की विभूति पर मुग्ध होते देखे जाते

Until, the breath of this corporeal frame
And even the motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
In body, and become a living soul
While with an eye made quiet by the power
Of harmony, and the deep power of joy,
We see into the life of things

कवि को प्रकृति में मानवता का करुण संगीत सुनाई पड़ता है—

For I have learned
To look on nature, not as in the hour
Of thoughtless youth but hearing often-times
The still, sad music of humanity,
Nor harsh nor grating, though of ample power
To chasten and subdue And I have felt
A presence that disturbs me with the joy
Of elevated thoughts a sense sublime
Of something far more deeply interfused,
Whose dwelling is the light of setting suns,
And the round ocean and the living air,
And the blue sky, and in the mind of man
A motion and a spirit that impels
All thinking things, all objects of all thought,
And rolls through all things

हमारे कवि श्री सुमित्रानंदन पंत को प्रकृति मानव की तुलना में कितनी स्पृहणीय जान पड़ी है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन—
भूल अभी से इस जग को ?

अभिप्राय यह कि प्रकृति केवल बाहरी जड़सत्ता ही नहीं है, वह सचेतन है और हमारी आत्मा के साथ उसका घनिष्ठतम सम्बन्ध है। वह एक प्रत्यक्ष, प्राणवान व जीवित सत्ता है। ऐसी प्रकृति के चित्रण या वर्णन में स्वतन्त्र रस की सत्ता न मानना कदापि न्यायोचित नहीं।

काव्य में प्रकृति के विविध प्रयोग

लिए बिना काव्य चल ही नहीं सकता। शुद्ध नर-जीवन सम्बन्धी काव्य में भी प्रकृति की शरण लेनी ही पड़ती है। रमणी के मुख की उपमा कमल अथवा चन्द्रमा से दिए बिना हृदय की पूरी तुष्टि नहीं हुई। बाहु की उपमा मृणाल से और आँख की उपमा मछली, और खजन की आँखों से देनी ही पड़ी। फारसी शायरी में शायरी आँख की उपमा बादाम से देकर ही खुश हो गए पर चमन, गुल, लाला नरगिस, बुलबुल आदि को वे भूल न सके। कोह, बयाबान आदि की बात तो जाने दीजिए क्योंकि वहा इनका वर्णन भारी विपत्ति या दुर्दिन के ही प्रसग में मिलता है। अलबुर्ज जैसे सुन्दर पहाड़ का विशद वर्णन तक उन्होंने न किया। वहा प्रकृति के सामान्य चिर-परिचित रूपों में अनुराग न जता कर बगीचों के गोल चौखूटे कटावों, सीधी सादी रविशों और मेहदी के बने भद्दे हाथी-घोड़ों, काट-छाँट कर सुडौल किए हुए सरो के पेड़ों की कतारों, एक पंक्ति में फूले हुए गुलाब के फूलों का ही वर्णन किया गया है। भारतीय कवियों में प्रकृति-वर्णन का आदर्श ही और रहा।

प्रकृति के अनन्त रमणीय प्रसार में काव्योपयोगी असीम सौन्दर्य्य, अगाध माधुर्य्य, अगणित रञ्जनकारी ध्वनियाँ, आकर्षक वर्ण, रूप, आकृतियाँ, भरी पड़ी है। रूप-माधुर्य्य के इस अक्षय भाण्डार से काव्य अपने को सदा श्री-सम्पन्न रखता है। उसमें प्रकृति का ग्रहण विभिन्न रूपों में होना है।*

अपने "An introduction to the study of literature" के "On the treatmen of Nature in poetry" नामक परिशिष्ट (Appendix) में हडसन (W. H. Hudson) ने काव्य में प्रकृति का निम्नांकित रूपों में प्रयुक्त होना निरूपित किया है—

The poetry of simple delight in nature; The poetry of Nature's sensuous beauty, The metaphorical use of Nature, Nature as back-ground, The poetry of associa-

There is life in the fountains ;
Small clouds are sailing,
Blue sky prevailing ;
The rain is over and gone !

× × ×

Up up with me into the clouds
For thy song, Lark, is strong ,
Up with me, up with me into the clouds !
Singing Singing,
With clouds and sky about thee ringing,
Lift me, guide me till I find
That spot which seems so to thy mind !

× × ×

While I am lying on the grass
Thy two-fold shout I hear,
From hill to hill it seems to pass
At once far off and near.

......Wordsworth.

ऐसी कविताओं में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि उनका वातावरण बड़ा हल्का और प्रसन्न होता है। ऐसी कविताओं में ध्वनि का भी सामञ्जस्य आवश्यक है। पक्षियों की चहक, लहरों की कोमल कल-कल ध्वनि, खेलते-कूदते जाते हुए निर्झर का कल-निनाद, खेतों अथवा मैदानों में से उठ कर आई ऊँची आवाजें इत्यादि ऐसे दृश्यों में ध्वनि का विधान करती है। इन ध्वनियों से वह दृश्य मुखरित हो जाता है और तदनुसार कवि भी वैसी ही ध्वनि की संवेदना अपनी कविता में उत्पन्न करता है। यह भी कहना आवश्यक है कि इस प्रकार की कविताओं में वर्ण्य-वस्तु प्रायः हमारे हृदय की कोमल भावनाओं की ही आलम्बन होती है। वीरता की व्यंजना ऐसे दृश्यों को देखकर नहीं हो सकती क्योंकि वे हमारे हृदय की कोमल वृत्तियों को ही जगाते हैं। कवि का प्रसन्न और हल्का हृदय ही ऐसी कविताओं में प्रतिबिम्बित होता

उपर्युक्त अन्योक्तियों में जीवन के इस तथ्य के मार्मिक मूर्त प्रत्यक्षीकरण के लिए कि जब काल आ पहुँचता है तब किसी को नहीं छोड़ता, प्राकृतिक व्यापार—वृक्षों का पवन में डोलना और कलियों का हँसना (लक्षणा से पुकारना)—चुने गए हैं। इस प्रकार प्रकृति अप्रस्तुत के रूप से गृहीत हुई है; प्रस्तुत, काल के आ पहुँचने का सत्य है। प्राचीन हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार की बहुत मार्मिक अन्योक्तियाँ भरी पड़ी हैं। अन्योक्तियों की तरह ही 'दृष्टान्त' के उदाहरण भी मिल सकते हैं।

अप्रस्तुत-विधान

(८) अप्रस्तुत-विधान अथवा अलंकारों की योजना में जिसमें प्रस्तुत उपमेयों के उपमान खड़े करने के लिए प्राकृतिक रूप-व्यापार चुने जाते हैं। इसके अन्तर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, दृष्टान्त, अन्योक्ति आदि आते हैं। रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण के रूप में सूर का एक प्रसिद्ध पद दिया जा सकता है जिसमें केवल प्राकृतिक उपमानों का कथन मात्र है और उपमेय पक्ष व्यंग्य है—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृगमद काग।
खंजन, धनुष, चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर एक मनिधर नाग॥
अंग अंग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधा-रस मानहु अधरन के बड़ भाग॥

(भ्रमरगीत-सार)

इसमें रूढ़ उपमानों का कथन मात्र है। जायसी के 'पदमावत' में पद्मावती के सौंदर्य-वर्णन में तथा गुप्त जी के 'साकेत' में उर्मिला के सौंदर्य-वर्णन में भी रूपकातिशयोक्ति का सुन्दर प्रयोग हुआ है। ऐसा विधान काव्य में अब अच्छा नहीं माना जाता। प्रकृति का महत्वपूर्ण उपयोग अलंकारों आदि में भी होता है। मुख की उपमा कमल अथवा

तथा,

उठ, उठ, री लघु लघु लोल लहर !

अभिव्यंजना का लाक्षणिक वैचित्र्य तथा प्रतीकात्मक प्रयोगों का प्राचुर्य्य, नवीन हिन्दी-कविता की प्रमुख विशेषताएं हैं। अतः प्रतीकों पर हिन्दी कविता पर विचार करते समय आगे लिखा जायगा।

अमरत्व और ईश्वर की भावना

(७) मनुष्य के हृदय में अमरत्व की भावना जगाने तथा रहस्य की प्रतिष्ठा करने वाली के रूप में,

प्रकृति-दर्शन से मन में रहस्य-भावना का स्फुरण किस प्रकार स्वभावतः हो जाता है इसका निरूपण पिछले प्रकरण में हो चुका है। कवि लोग प्रकृति का प्रयोग ईश्वरीय-सत्ता की कुछ झलक देने के प्रयोजन से भी करते हैं। उसे देखकर उन्हें अपनी अमरता का भी भान होता है और कभी कभी प्रकृति की नित्यता और अपनी अनित्यता का भी—

"कलिके! मैं चाहता तुझे उतना जितना यह अमर तरु,
अरी नदी की दूब सघन न उतनी जितना अमर नहीं।
किशलय, न भी मेरे चन्द्रवदना निशि, न मेरी तारा!
दुख है, इस आनन्द कुंज में मैं न हो केवल अमर नर॥"

(रेणुका, 'दिनकर')

कीट्स ने अपने 'Ode to the Nightingale' में अपनी अचिरता और पक्षी की अमरता का कैसा करुण वैषम्य दिखाया है—

"Thou wast not born for death, immortal bird!
No hungry generations tread thee down;
The voice I hear this passing night was heard
In ancient days by emperor and clown . . ."

अर्थात्, हे पक्षी, तुम्हारा जन्म मरने के लिए नहीं हुआ। मनुष्य-समाज की चली आती हुई परम्पराओं के उत्थान-पतन के प्रभावों से

मेरे छोटे से अन्तर में
लय होते जग के हास रुदन,
मैं पञ्च-तत्व के पलने में
पलता रहता हूँ चिर शिशु तन !
कर रही प्रकृति मेरा पोषण ! मैं चिर०

अनुराग-लालिमा में अपनी
जल, थल, अम्बर मैं रहा लोप,
मैं निखिल विश्व के आगन में
जल रहा चिरंतन अमर दीप-
मुझसे परिचित जग का कण-कण ! मैं चिर०

('प्रथम किरण' से)

(८) सर्व-ग्रासिणी क्रूर सत्ता के रूप में ;

प्रकृति की क्रूरता : व्यावहारिक स्वरूप

प्रकृति के क्रूर और कोमल दोनो रूपों को कुछ कवियों ने देखा है। समुद्र में न जाने कितने जल-यान डूबते हैं किन्तु फिर भी वर्ड्सवर्थ उसे कोमल रूप में ही देखता है—

I could have fancied that the mighty Deep
Was even the gentlest of all gentle things.
(Nature and the poet)

लेकिन और कवियों ने प्रकृति में क्रूरता, भीषणता, कठोरता, ध्वस, नाश आदि के विकराल रूपों को भी देखा। प्रकृति की शान्तिपूर्ण सुकुमारता देखकर टेनीसन ने यह भी कहा कि अभी क्रूर, सर्वभक्षिणी और बर्बर भी वह है (Nature is still red in tooth and claw)। प्रकृति के इस व्यावहारिक अथवा लौकिक स्वरूप की मीमांसा श्री भगवती चरण वर्मा ने अपने 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास (पृ० १३८-१३९) में बीजगुप्त और यशोधरा के कथोपकथन के बीच की है :—

"बीजगुप्त:—'हाँ प्रकृति अपूर्ण है ! प्रकृति के अपूर्ण होने के कारण ही मनुष्य ने कृत्रिमता की शरण ली है। दूर्वादल कोमल है सुन्दर है, पर उसमें नमी है, उसमें कीड़े मकोड़े मिलेंगे। इसीलिए मनुष्य ने मखमल के गद्दे बनवाए हैं जिनमें न नमी है, और न कीड़े मकोड़े हैं साथ ही जो दूर्वा-दल से भी कहीं अधिक कोमल है। जाड़े

"अपना अपना भाग्य" कहानी मे श्री जैनेन्द्रकुमार ने एक ओर स्वास्थ्य-लाभ और आमोद-प्रमोद के लिए की गई नैनीताल-यात्रा और दूसरी ओर पहाड़ी लड़के की मृत्यु के बीच खड़े किए वैषम्य में प्रकृति की क्रूर-क्रीडा की ही ओर दबा हुआ सकेत है।

तात्पर्य्य यह है कि प्रकृति के व्यावहारिक और काव्य-गत स्वरूप मे भेद है किन्तु साहित्य मे प्राय: उसके प्रत्येक रूप और व्यापार को कला की तृप्ति के लिए मधुर कर लिया जाता है।

प्रकृति और सभ्यता

(९) कभी कभी कवि लोग प्रकृति के बीच चलते हुए जीवन और नर-समाज के बीच चलते हुए जीवन पर सामूहिक दृष्टि डाल कर पिछले प्रकार के जीवन को ही जीवन का प्रकृत स्वरूप समझते है और उसी के अनुसार विश्व-जीवन का सशोधित होना कल्पित करते है। जीवन की स्वभाविक और मूल पद्धति को छोडकर जो आधिभौतिक विज्ञान-प्रसूत नवीन परिस्थितियो मे निर्मित तर्क-बुद्धि-प्रधान कर्म-कोलाहलपूर्ण जीवन हम व्यतीत कर रहे है वह प्राकृतिक जीवन से बहुत दूर जा पडा है। और इसीलिए हमारा जीवन एक अविराम क्रन्दन हो गया है। हम आत्मा से शरीर की ओर आ गए है। शान्ति- पूर्ण जीवन का निर्वाह प्राकृतिक जीवन-परिस्थितियों में ही सम्भव है। एक ओर कवि नर-समाज का जीवन देखता है और दूसरी ओर प्रकृति का। वह दोनो मे घोर विरोध देखता है।

हमारा आज का जीवन

आज हमने विशाल और वैभवशाली नगरो का निर्माण कर लिया है। हस्तकला और शिल्प का जनाजा निकाल कर, मनुष्य के हाथ का प्यारा कार्य छीन कर, कल-कारखानों की शरण ले ली है। सभ्यता की उन्नति (?) के लिए अवकाश पाने की धुन में होटलों मे पेट-पूर्ति का संधान बाँध कर कुछ शिक्षितो ने अपनी गृह-लक्ष्मियों को, घर

जगत् की सुधा-शांति को अधर्म-युद्ध के प्रचण्ड कोलाहल से भंग कर वह अपनी आसुरी वृत्तियों से प्रकृति की महाशक्तियों पर विजय प्राप्त कर रहा है और अनियन्त्रित महत्वाकांक्षा के प्रचण्ड वात्याचक्र में फँस कर जीवन की सात्विक शान्ति को खो रहा है।

आज की सभ्यता मनुष्य को घोर कृत्रिमता की ओर ले जा रही है। सहज सुन्दर विश्वासों से हमारा मन हटाया जा रहा है। विज्ञान के इस अन्ध-युग में मनुष्य बाह्य साधनों से सम्पन्न होकर अपनी बुद्धि का श्लाघ्य प्रदर्शन तो कर चुका है किन्तु उसका हृदय अभी भूखा ही है। हम अपनी बुद्धि से आकाश-यान जितना ही जितना ऊँचा उड़ा सकने में समर्थ हुए, हम उतने ही अधिक रसातल में गिरे। सहस्रों कोसों के भयानक और दुस्तर महासमुद्रों को पार कर हम विविध देशों के बीच पारस्परिक ऐक्य स्थापित करने के लिए सुदृढ़ जलयानों को लेकर जितनी ही तेजी से दौड़े उतना ही उतना मनुष्य का हृदय दूर रहा। विश्व-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-शान्ति का आज के युग ने जितना ही जितना प्रचार किया उतने ही उतने राष्ट्र भूखे भेड़िये की तरह दहाड़ कर एक दूसरे पर लपके। आज मनुष्य के प्रकृत धर्म का दुःखद ह्रास हो रहा है। हमने जितना ही जितना अपनी मुखाकृति को पोमेड, स्नो और ब्रिलियन्टाइन से उज्ज्वल बनाया उतनी ही उतनी कालिमा हमारे हृदय पर छाती गई। हम ग्रामोफोन की जड़ चूड़ी में अपरिचित व्यक्तियों का स्वर सरक्षित कर सकने में पूर्ण सफल हुए किन्तु हमने प्रत्यक्ष, सामने खड़े हुए दीन का रुदन हर्गिज न सुना। मनुष्य का कैसा घोर अधःपतन है!

आज जीवन के प्राकृतिक सौन्दर्य, शान्ति और प्रेम का निष्ठुर अन्त हो रहा है। सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। गृह-जीवन, दाम्पत्य-जीवन ज्वाला-मय हो चला है। आध्यात्मिक सूर्य्य की रश्मियों से किरीटित, देवत्व के गिरि-शिखर पर प्रतिष्ठित, सृष्टि के मंगल वरदान—

अनुसार जीवन-यापन करने का अवकाश आज नहीं मिल पाता ! उस समय मन स्वतन्त्र था, तन स्वतन्त्र था। किन्तु जब झरनों का पानी बोतलों में भर कर बिकने लगा, मीठे रसीले फल, दूध, घी, मक्खन मनुष्य की हिकमत से, एअरटाइट डिब्बों में भर कर हजारों कोसों दूर बिकने के लिए पहुंचाये जाने लगे और स्वास्थ्य के लिये प्रकृति की गरज न रख के, मनुष्य ने सड़े अंगूरे के आसव का भी रुचि के साथ पान करना शुरू किया, नगरों के घरों के तहखानों तक भी मनुष्य ने आविष्कार-बुद्धि से पवन उत्पन्न कर लिया तब तो प्रकृति ने मानो मनुष्य से अपनी गहरी मात मंजूर कर ली। वह उपेक्षिता अब मनुष्य की सीमा में आने की हिम्मत नहीं करती ! मनुष्य अब भी उन्नति (!) करता जा रहा है। गोचर-भूमि, वन, पहाड़ और खेतों को छेक कर नगर-कारखाने बनाता जा रहा है। जिस दिन सूर्य्य की एक भी किरण मनुष्य को न दिखाई देगी, प्रभात की शीतल-मन्द वायु में सलज्ज कलियाँ अपने प्रेमी भँवर के सामने हृदय न खोल सकेंगी, उस दिन मनुज-सभ्यता का चरमोत्कर्ष होगा !!!

पौ फटने के समय ऊँची आवाज से सीटी देते हुए मिल-कारखानों की ऊँची ऊची चिमनियों से निकलते हुए सघन कज्जल-श्याम धूएं की लम्बी धारा आज जब सुदूर प्राची में उदित होते हुए देदीप्यमान सूर्य्य के आगे से हो कर निकलती है तब मुझे ऐसा मालूम होता है मानो साक्षात् विज्ञान अपने मन में अपने को घोर पातकी और कुचाली समझ कर अपनी पाप-पूर्ण बाहे स्वर्ग की देवी उषा की आँखों के आगे इस भय से कर देता है कि वह उसे पहिचान कर उसकी सारी भौतिक पाप-लीला का जिक्र स्वर्ग में जा कर न कर दे !

कवि एक ओर तो मनुष्य-समाज के बीच का यह जीवन देखता है और दूसरी ओर प्रकृति का शान्तिपूर्ण जीवन। भावुक कवि प्रकृति के रहस्यपूर्ण नियम को समझ कर विश्व-जीवन को भी इसी नियम

तृतीय प्रकरण

काव्यों में प्रकृति-चित्रण

(क) संस्कृत-काव्य में प्रकृति-चित्रण

सामान्य परिचय

पिछले प्रकरण मे परवर्ती संस्कृत कवियो और आचार्यों द्वारा, प्रकृति के उद्दीपन-रूप मे ही गृहीत किए जाने पर कुछ कहा गया था। वाल्मीकि के पश्चात् कालिदास और भवभूति तक तो प्राकृतिक दृश्यो का स्वतन्त्र आलम्बन-गत वर्णन करने की प्रवृत्ति रही किन्तु आगे चल कर कुछ इनी गिनी वस्तुओ का कथन-मात्र करके ही काम चलाया जाने लगा। कालिदास के समय मे अथवा उनके कुछ पहले से ही दृश्य-वर्णन की दो प्रकार की पद्धतियाँ काव्य मे प्रचलित हुई। वनस्थली-चित्रण मे भी उसके संश्लिष्ट और विशद रूप मे चित्रित किए जाने की प्राचीन पद्धति ही प्रचलित रही। किन्तु ऋतु-वर्णन के लिए, भगवान् भरत मुनि के आज्ञानुसार केवल कुछ इनी गिनी वस्तुओ का ही नाम लिया जाना रहा। अत: परवर्ती संस्कृत काव्य मे अर्थ-ग्रहण कराने की ही प्रवृत्ति रही। "सूक्ष्मरूप-विवरण और आधार-आधेय की संश्लिष्ट योजना के साथ बिम्ब-ग्रहण कराना" कवियो का लक्ष्य न रहा। आदि-कवि वाल्मीकि तथा भास आदि के काव्य की तुलना करने से यह स्पष्ट लक्षित हो जायगा। तात्पर्य यह है कि प्राचीन संस्कृत-काव्य मे प्रकृति बहुत कुछ आलम्बन रूप मे ही कवियो द्वारा गृहीत हुई किन्तु परवर्ती कवियो ने तो उसका उपयोग केवल उद्दीपन के रूप मे ही किया।

ऐसी नहीं जो उन्हें अपनी निर्मल-तरलता और सरल-स्वतन्त्रता का आनन्दानुभव कराए बिना मिट गई हो। वृक्ष से पृथ्वी तक झरते हुए फूल अथवा पत्ती की सारी गति-विधि का उन्होंने निरीक्षण किया था। उन्होंने अपनी प्यारी मातृ-भूमि के सुन्दर, साधारण, सुकुमार, क्रूर आदि सब रूपों को अनन्य प्रेम के साथ हृदयगम किया था। यही कारण है कि उनके वर्णन में इतनी सम्पूर्णता, विविधता और नवीनता मिलती है। उनका समस्त प्रकृति-वर्णन उनके अनन्य और अतल मातृ-भूमि-प्रेम का परिचायक है। मातृ-भूमि के प्रेम में उस की मिट्टी भी कञ्चन हो जाती है। ऊधो जब गोपियों से मुँहकी खा कर लौटे तब उन पर प्रेम का इतना घना प्रभाव छाया हुआ था कि यमुना की रेत भी उन्हें रसीली प्रतीत हुई। कृष्ण से मिलने पर उन्होंने कहा—

> छावते कुटीर कहूँ रम्य यमुना के तीर
>
> गौन रौन-रेती सों कदापि करते नहीं।
>
> कहै 'रत्नाकर' बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़
>
> स्रोत रसना में रस और भरते नहीं॥
>
> गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
>
> लेखि प्रलयागम हूँ नैकु डरते नहीं।
>
> होतौ चित चाव जो न रावरे चितावन कौ
>
> तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं॥
>
> —उद्धवशतक ('रत्नाकर')

यह है प्रेम का प्रभाव! रेत में ही इतनी सरसता हो सकती है फिर सारे देश का प्रेम तो कितना अथाह होता होगा! ऐसी ही देश-प्रीति की माधुरी से उन कवियों का हृदय सराबोर था। क्यों न हो! जिस पवित्र आर्य्य-भूमि की पुण्य-सलिला जान्हवी, यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्रा, गोमती, क्षिप्रा आदि नदियाँ उनकी प्रेरणा मातृभूमि शस्य-श्यामल मैदानों, रमणीय उपत्यकाओं, हरी भरी घाटियों, वन-काननों में बहती हुई

कवि की दृष्टि जाना, उसकी व्यापक रसात्मक दृष्टिसूचक है। तड़क-भड़क की चीजों पर ही दृष्टि जाना सच्ची कवि-दृष्टि नहीं।

'रघुवंश' में एक जगह दिलीप, उनकी पत्नी और नंदिनी गाय के मार्ग चलने का दृश्य अत्यन्त रमणीय है। वह कवि की प्रतिभा का उत्कृष्ट परिचय है—

> तस्याः खुरन्यासपवित्र-पांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया।
> मार्गं मनुष्येश्वर धर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्॥
> (रघुवंशः, द्वितीय सर्ग)

इसमें कवि का वस्तुओं की सश्लिष्ट योजना द्वारा 'बिम्ब-ग्रहण' कराने का लक्ष्य स्पष्ट प्रतीत होता है। केवल वस्तु-परिगणन नहीं, बिंब-ग्रहण ही कवि की प्रतिभा का सूचक है।

'मेघदूत' तो काव्य-प्रेमियों का कण्ठहार ही है। कालिदास उपमाएँ देने में अद्वितीय माने जाते हैं किन्तु उनके चित्र उपमाओं के कारण विकृत नहीं होते। 'मेघदूत' का 'पूर्वमेघ' अत्यन्त रमणीय चित्रों का कोष है। चिर-परिचित और साधारण प्राकृतिक रूपों, खण्डहरों, निर्जन काननों आदि का वर्णन उन्होंने पूर्ण रस-प्रवणता के साथ किया है। 'मेघदूत' की कुछ झाँकियाँ देखिए—

> मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां।
> वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
> गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः।
> सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः॥

> त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः।
> प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
> सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं।
> किंचित्पश्चाद्व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण॥

> नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै,—
> राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।

उपर्युक्त चित्र में गहन वन में वन-जन्तुओं के नाद तथा गुफा में फन पसार कर सोए अजगर तक तक कवि की दृष्टि गई है। इतना ही नहीं, दरार पड़ी भूमि में थोड़े जल के भरे रहने का चित्रण भी कवि की सूक्ष्म-दृष्टि-सम्पन्नता का द्योतक है।

भवभूति ने घने पेड़ों के समूहों, नीलवर्ण वाले वन में आलिंगित गोदावरी के तटों, प्रस्रवण नामक पर्वत की गुफाओं व उस पर छाये मेघों, मञ्जुभाषी मल्लिकाक्ष नामक हंसों के परों से कम्पित और श्वेत कमलों वाले पम्पा सरोवर के प्रदेशों, मयूर-कण्ठों से श्यामल छाया-कुंजों, मृग समूहों व हिंसक जन्तुओं से भरे विशाल वनों का जो तन्मयकारी वर्णन किया है वह सच्चे भावुकों के हृदय को रस-मग्न कर देने वाला है। एक अन्तिम चित्र और देखिए—

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा—
 स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जु-वञ्जुल-लतानि च तान्यमूनि,
 नीरन्ध्र नील-निचुलानि सरित्तटानि॥

माघ

इन कवियों की रचना का रसास्वादन करने के बाद यदि हम माघ, बाण आदि की रचनाओं पर दृष्टि डालें तो उनमें उनकी अलंकार प्रियता ही विशेष लक्षित होगी। उनमें पहले के कवियों की तरह वस्तुओं और व्यापारों का स्वाभाविक व संश्लिष्ट चित्रण नहीं दीखता, उपमादि की प्रधानता है। उदाहरणार्थ—

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव॥
विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥

(शिशुपालवध)

अब बाण को भी लीजिए। उनकी 'कादम्बरी' के अन्तर्गत

सुन्दर वर्णन देखिए—

"मन्दं मुद्रितपांशवः परिपतज्झङ्कारझञ्झामरुद्वेगध्वस्त कुटीरकान्तरगतच्छिद्रेषु लब्धान्तराः। कर्मव्यग्रकुटुम्बिनीकुचतटस्वेदच्छिदः प्रावृषः प्रारम्भे निपतन्ति कन्दलदलोल्लासाः पयोबिन्दवः (अमरुशतक, ४८)

भावार्थः—धीरे धीरे धूल को नीचे बैठाने, झंकार करती आंधी के वेग से ध्वस्त किए गए तृणकुटीरों के मध्यगत विवरों में स्थान पाते, घर के काम में लगी हुई कामिनियों के कुचों के पसीने को हरते, केले के पत्तों को उल्लसित करते जल-बिन्दु वर्षा-ऋतु के आरंभ में बरसते हैं।

वस्तु-व्यापारों की संश्लिष्ट योजना और सूक्ष्म निरीक्षण यहीं है! ऊपर के चित्र में आए "परिपतज्झंकारझंझामरुद्वेग ...." में पत्तों डालियों आदि में आंधी के कारण ध्वनि उत्पन्न होने की संवेदना पूर्ण भावुकता के साथ कराई गई है।

ऊपर संस्कृत की, प्राचीन और परवर्ती दोनों कालों की रचनाओं के उदाहरण दिये गये हैं। उनकी काव्य-शैली में उत्तरोत्तर परिवर्तन अलंकारों के ही कारण आया।

अब हम आगामी खंड में अंग्रेज कवियों की प्रकृति- सम्बन्धी रचनाओं पर कुछ विचार करेंगे।

(ख) अंग्रेजी काव्य में प्रकृति-चित्रण

प्राचीन अंग्रेजी काव्य

ईसा की अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व अंग्रेजी के कवि (मिल्टन से पोप तक) छन्द, भाषा, भाव, अलंकार आदि की दृष्टि से प्रायः रूढ़ि-प्रिय ही रहे। स्वभाविक-स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) के आविर्भाव के पश्चात् वहाँ के कवियों की

काव्य-शैली में अधिक स्वच्छन्दता, स्वाभाविकता और गहनता आई। १७३० ई० के बाद से यहाँ के काव्य में नवीन तत्वों का समावेश हुआ।* और चित्र-विधायिनी कल्पना, अभिव्यंजना का लाक्षणिक वैचित्र्य, रंगीन-चित्रमयी व्यंजक भाषा, और नूतनगति-विधि-शील व्यंजना का पूर्ण कौशल उक्त दो शताब्दियों में दिखाई पड़ा।

मिल्टन (Milton) क्लासिकल काल का कवि है। हिन्दी के कवि केशव की ही तरह उसने प्रकृति को अपनी आँखों से नहीं, अध्ययन के ही माध्यम से देखा। फूलों का परिगणन देखिए :—

Bring the rathe primrose that forsaken dies,
The tufted crow-toe, and pale jessamine,
The white pink, and the pansy freaked with jet,
The glowing violet,
The musk-rose, and the well attired woodbine,
With Cowslips wan that hang the pensive head,
And every flower that sad embroidery wears :

फूलों का वर्णन प्रस्तुत करुण प्रसंग में संगत है किन्तु ये सब फूल एक ही ऋतु में उत्पन्न नहीं होते। मिल्टन की सुप्रसिद्ध कविता 'Lycidas' (जिससे यह अवतरण उद्धृत किया गया है) पर डा० जानसन (Johnson) का बुरी तरह पिल पड़ना प्रसिद्ध ही है।

ड्राइडन और पोप (Dryden and Pope) तक कविता

चलकर वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, कॉलरिज आदि में वह अपनी चरम प्रौढ़ता को पहुँच गया। यह प्रकृतिवाद क्या है, इसे भी कुछ समझ लेना चाहिए।

स्वाभाविक-स्वच्छन्दतावाद और प्रकृतिवाद दोनों परस्पर भिन्न है। पहला दूसरे की शाखा मात्र है। प्रकृति काव्य का रोमान्टिक काव्य से कई बातों में सम्बन्ध नहीं। रोमान्टिक काव्य में आदर्श-वाद ही प्रधान रहता है। वह अपने आदर्श अतीत की ओर देखता है और वहीं जीवन के चरम सौन्दर्य का दर्शन करता है। प्राचीन युद्ध-काल के वीरोत्साहपूर्ण जीवन में सौन्दर्य्य और उल्लास का दर्शन कर उसी अतीत काल को वह आदर्श समझता है तथा संसार में फिर से एक बार वैसी ही जीवन-पद्धति के लौटने की कामना करता है। रोमान्टिक कवि का विषय प्राचीन युगों के लोगों का समस्त क्रिया-कलाप है जिसमें उनका सच्चा पुरुषार्थ, उदारता, युद्ध-प्रियता, चरित्र की उज्ज्वलता, कर्त्तव्य-परायणता, निर्भीकता, वीरोचित आन, ठाठ-बाट, राग-रंग, उत्सव, कला आदि सभी का समावेश हो जाता है।* किन्तु प्रकृतिवादी (Naturalist) कवि का विषय कठोर राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के बीच पिसता हुआ, समाज का दलित वर्ग है। अतः वह दलित वर्ग और शोषक पूँजीपति वर्ग के बीच का घोर वैषम्य अंकित करता है। इसके अतिरिक्त उसका विषय बाह्य प्रकृति का, जैसी वह उसकी आँखों के सामने दिखाई दे रही है, यथातथ्य चित्रण करना भी है जिसमें पशु-पक्षी, पालतू जानवर और मनुष्यों का तथा उनके प्रीतिपूर्ण पारस्परिक सम्बन्धों का सच्चा स्वरूप अंकित किया जाता है। दोनों का स्पष्ट अंतर यह है :—

स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद और प्रकृतिवाद

*.. S A. Brooke "Naturalism in English Poetry" Page 33.

उल्लासपूर्ण रहा। किन्तु जब उसकी दृष्टि मानव जीवन के करुण पक्षों की ओर पड़ती है तब वह मनुष्य-हृदय के चिर-निगूढ़ गहनतम तत्वों मे पहुंच कर मानव-सुलभ सहानुभूति, दया, उदारता, करुणा, और ममता की ऐसी हृदय द्रावक वाणी में बोलता है कि समस्त प्राणी-मात्र एक अटूट स्नेह-सूत्र में जकड़ा हुआ जान पड़ता है। हमारे जीवन का परिचालन करने वाली नियति की अन्ध-शक्तियों की मानव के साथ की जाने वाली निष्ठुर-क्रीड़ा को तथा मानवोचित ह्रास-अश्रु, जन्म मरण आदि सबको उसने स्वीकार किया। प्राकृतिक द्वंद्वों के बीच चलते जीवन को, बिना किसी विद्रोह-भावना के, स्वीकार करना ही वह श्रेयस्कर समझता है—

Thanks to the human heart by which we live,
Thanks to its tenderness, its joys and fears,
To me, the meanest flower that blows can give
Thoughts that do often lie too deep for tears.

शेली को भी हिम, पाला, लहरों आदि सब रूपों के साथ प्रकृति प्रिय है:—

'I love snow and all the forms—
Of the radiant frost ;
I love waves, and winds, and storms,
Everything almost
Which is Nature's and may be
Untained by man's misery.
(Invocation : Shelley)

वर्ड्सवर्थ की आँख प्रकृति-दर्शन के लिए इतनी सजग रहती है कि लन्दन नगर के बीच स्थित 'वेस्टमिन्स्टर ब्रिज' से भी उसकी दृष्टि थिएटरों, गिर्जाघरों, जहाजों, गुम्बदों, मीनारों, और प्रासादों आदि के आगे फैले खेतों के पार सूर्योदय के दृश्य पर ही टिकती है। लन्दन नगर भी उसे आलौकिक-स्वर्गीय-ज्योति से जगमगाता ा:—

Dear God, the very houses seem asleep
And all that mighty heart is lying still.

हम रात दिन कमाने-खाने में ही लगे रहते हैं और माया में ऐसी बुरी तरह फँसे हैं कि आत्म-चिन्तन तो दूर रहा, प्रकृति को फूटी आँखों भी नहीं देखते। इस पर कवि का क्षोभ देखिए:—

> The world is too much with us : late and soon
> Getting and spending, we lay waste our powers
> Little we see in Nature that is ours :
> We have given our hearts away, a sordid boon !

और आगे चलकर वह अपने अटूट प्रकृति-प्रेम का परिचय यों कह कर देता है कि हे भगवान्! कभी कभी मेरे मन में आती है कि मैं पाषाण-काल के प्राकृत प्रकृति-पूजकों की तरह बन जाऊँ जिससे कम से कम मुझे इस समुद्र में किसी अलौकिक शक्ति अथवा देवता के निवास का निश्चय तो बना रहे—चाहे फिर वह अंध-विश्वास ही क्यों न हो!

> Great God ! I would rather be.
> A pagan suckled in a creed outworn,
> So might I, standing on this pleasant lea,
> Have glimpses that would make me less forlorn ;
> Have sight of Proteus rising from the sea ;
> Or hear old Triton blow his wreathe'd horn.

.. The boundless plain of waters seems to lie :—
Comes that low sound from breezes rustling over
The grass-crowned headland that conceals the shore ?
No, 't is the earth-voice of the mighty sea,
Whispering how meek and gentle he can be !

अब शेली की प्रकृति-सम्बन्धी रचना पर थोड़ा दृष्टिपात किया जाय। स्वतन्त्रता का उन्मत्त उपासक होने के कारण उस में विद्रोह, प्रचण्डता और अशान्ति ही अधिक दिखाई देती है। रूढ़ि-ग्रस्त जरा-जीर्ण समाज को एक स्वतन्त्र आदर्श मानव समाज के रूप में परिवर्तित होते देखने की कामना उसमें प्रबल है। समाज के बीच फैले अन्याय, अत्याचार, पाखण्ड आदि से क्षुब्ध उसके हृदय की उग्र दशा उसकी बहुत सी कविताओं में प्रतिबिम्बित होती है। ऐसी कविताओं में "Ode to the West Wind" नाम की भी एक कविता है। उसमें वह पश्चिमी झंझा से प्रार्थना करता है कि वह उसके हृदय के ओजपूर्ण भावों को अपने झोंकों में लेकर समस्त संसार में फैला दे ताकि उसमें नव-जीवन का संचार हो और नवीन सभ्यता का नूतन प्रभात उदित हो।

शेली

Make me thy lyre, even as the forest is :
What if my leaves are falling like its own !......
..... Drive my dead thoughts over the universe
Like withered leaves to quicken a new birth !
And, by the incantation of this verse,
Scatter, as from an unextinguished hearth
Ashes and sparks, my words among mankind !
Be through my lips to unawakened earth
The trumpet of a prophecy ! O wind,
If winter comes, can Spring be far behind ?

इसमें कवि को अपना सम्पूर्ण अस्तित्व अज्ञानान्धकार में सुप्त

कीट्स सुदूर गिरिमाला की हरी-भरी तलहटियों में वासन्ती धूप में लहलहाती पुलकाकुल रंगीन तितलियों की गतिवाली स्वप्निल मृदुल कल्पना लिए कला-कुमार कीट्स (Keats) सौन्दर्य-लोक में ही विचरता रहा। प्रकृति के सुकुमार रूपों के प्रति कीट्स का कितना अनुराग था इसका परिचय उनकी एक उपमा से लगेगा। उसमें 'प्रभाव-साम्य' पर अत्यन्त मार्मिक दृष्टि रखी गई है। एन्डीमियोन (Endymion) नाम के उसके एक कल्पनात्मक प्रवन्ध-काव्य में नायक एन्डीमियोन के एक सुन्दरी पर मोहित हो जाने पर उसकी वहिन उसका मोह निवारण करती है। प्रेम के गम्भीर प्रभाव से वोझल उसकी वन्द पलकें, वहिन के उपदेश के कारण, खुलती तो है पर ऐसे, मानो फूलों का रस पीने मे मग्न उनीदी तितलियों की पाँखों के बीच मे से वसन्त-पवन का झोंका निकल जाय और वे थोड़ी सी फैल कर रह जायँ :—

Yet, his eyelids
Widened a little, as when zephyr bids
A little breeze to creep between the fans
Of careless butterflies :

(Endymion Book I, lines 762-765)

यह काव्य अत्यन्त कोमल और रंगीन कल्पनाओं, नवीन उद्भावनाओं और सौन्दर्यपूर्ण चित्रों से भरा पड़ा है जिसका आनन्द पढ़ने से ही मिल सकता है।

"वुलवुल के प्रति" (Ode to the Nightingale) भी कीट्स की वहुत प्रसिद्ध रचना है। उसमे उसने पूर्ण भाव-सत्यता के साथ हृदय की गम्भीरतम उदास भावनाओं को वाणी दी है। इसी कविता मे गूढ़ प्रकृति-प्रेम और विस्तृत निरीक्षण लक्षित होता है—

I cannot see what flowers are at my feet,
Nor what soft incense hangs upon the boughs,
But, in embalmed darkness, guess each sweet
Wherewith the seasonable month endows

चतुर्थ प्रकरण

हिन्दी-कविता में प्रकृति-चित्रण

(प्राचीन कविता)

विगत एक हजार वर्षों के हिन्दी-साहित्य पर दृष्टि डालने पर हमें यह बात आश्चर्य के साथ देखनी पड़ती है कि चन्द-वरदाई से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक प्रकृति के प्रति उस स्वतन्त्र अनुराग की व्यंजना नही के बराबर है जो काव्य मे प्रकृति के जितने भी प्रयोग है उन सब के मूल में है, अतः सब मे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अलकार, वातावरण, पृष्ठभूमि, प्रतीक आदि मे कवि का प्रकृति के प्रति रुझाव अवश्य कुछ सूचित होता है किन्तु पहली बात तो यह है कि वह परोक्ष होता है और फिर यदि परम्परागत रूप-व्यापारों से हट कर अपने निजी निरीक्षण के आधार पर उनमे कोई विशिष्टता उत्पन्न न की या उनकी कोई नवीन योजना न की तो उन सब प्रयोगों मे जड़ता, निर्जीवता या परम्पराभुक्तता ही मिलेगी। प्रकृति के प्रति पूर्ण स्वतन्त्र व्यजना की दिशा मे हम भारतेन्दु को आरभिक उड़ान के लिए फडफडाहट भरते हुए पाते है, यद्यपि उनमे भी अलकार-प्रियता के प्राचीन सस्कार पूर्णतया विद्यमान है। जो हो, प्रकृति-निरीक्षण की मौलिकता व चित्रण की दृष्टि से हम भारतेन्दु को प्राचीन व नवीन की सीमा-रेखा मान सकते है। प्रकृति का मुख्यतः उद्दीपनगत रूप ग्रहण करने की दृष्टि से चन्द से लेकर भारतेन्दु के उदय तक का काव्य आलोच्य विषय की दृष्टि से प्राचीन कविता की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है—मोटे हिसाब से ही, क्योंकि मुख्यतः उद्दीपन रूप का ग्रहण होते हुए भी अलकार, रहस्य, प्रतीक आदि रूपो का भी ग्रहण है जिनसे कवियो का न्यूनाधिक प्रकृति-निरीक्षण झलकता है।

प्राचीन संस्कृत कवियों तथा यूरोपीय कवियों की तरह मनुष्येतर बाह्य प्रकृति का स्वतन्त्र आलम्बन के रूप में रसात्मक विशद वर्णन करने की चाल हिन्दी में पहले कभी नहीं रही। इसका कारण प्रधानतः यह था कि परवर्ती संस्कृत कवियों का भी ध्यान ऐसे वर्णनों से हटता जा रहा था। अतः यही परम्परा हिन्दी में भी आ गई। चन्द से लेकर भारतेन्दु तक काव्य-शासन के अनुकूल ही प्रकृति का चित्रण हुआ। प्राचीन आचार्यों ने प्रकृति आलम्बन-रूप में गृहीत न करके उद्दीपन रूप में की; अतएव कालिदास के बाद के संस्कृत कवियों तथा हिन्दी के प्राचीन और मध्यकालीन कवियों ने प्रकृति का उद्दीपनात्मक उपयोग ही किया। पर यह भी मानना पड़ेगा कि कुछ रस-सिद्ध कवियों ने उद्दीपन के रूप में भी उसका अत्यन्त स्वाभाविक और मार्मिक प्रयोग किया।

कहा जाता है। सूरज, चाँद, समुद्र, लहर, पवन, पुष्प, पशु-पक्षी पेड़-पौधे सभी विरह विरह में जल रहे हैं, भटक रहे हैं। सूफियों ने जिस विरह की कल्पना को अग्नि व प्रेम की दाह व पीर से सप्राण बना दिया है वह अपने रूप में भारतीय उपनिषदों में विद्यमान है—

स ईक्षत कथन्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति।*

वह परमात्मा हम सब में व्याप्त है। उसके स्वरूप को विस्मृत कर केवल भौतिक प्रपंचों में जीवात्मा का भटकते रहना ही मानो दुःखदैन्य रूप विरह का अनुभव करना है।

प्राचीन यूनानियों में भी यह भावना प्रचलित थी किन्तु कुछ बदले हुए रूप में। आध्यात्मिक सह मिलन की तीव्र वासना का आभास भौतिक प्राणियों के प्रेम-सम्बन्धों के बीच अनुभव किया गया। अपने आप में प्रत्येक व्यक्ति अधूरा है। पूर्ण परितृप्ति के लिए वह अपने पूरक को पाकर ही सुखी हो सकता है।×

फ़ारसी के ख्वाजा फ़रीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी, हकीम सनाई, गंजवी व उर्दू के मीर, सौदा, दर्द और असर की शायरी में यह विरह-वेदना व जलन अपने तीव्रतम रूप में प्रकट हुई है। कवि-शिरोमणि तुलसीदास ने भी चराचर की इस अमर विरह-भावना को 'विनयपत्रिका' के एक पद में व्यक्त किया है—

> सुनु मन मूढ़ ! सिखावन मेरो।
> हरि-पद-विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझ सबेरो॥
> बिछुरे ससि रवि मन नैननि तें, पावत दुख बहुतेरो।
> भ्रमत स्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो॥

* ऐतरेयोपनिषद्, ३।११

× Plato : The Symposium (W. Hamilton's translation, Penguim classies : 1951) page 59-62.

साधारण-असाधारण दोनों के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया है। सिंहलद्वीप की दुर्गमता, मार्ग की विकटता व समुद्र की भीषणता आदि की भावना कवि ने संक्षेप में कराई है किन्तु मार्मिक है। यदि कवि चाहता तो इन स्थलों पर प्रकृति का विस्तृत वर्णन कर सकता था किंतु कथा के वेग व प्रवाह के कारण वह अधिक न रुक सका। फिर भी वर्णन तुलसी जितना संक्षिप्त या सांकेतिक ही नहीं है जो इतना ही कह काम चला लेते हैं—

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया॥

समुद्र-वर्णन मे समुद्र की भीषणता व उद्वेग का अच्छा परिचय मिलता है किन्तु उसमें वैसी रसात्मकता नहीं जैसी 'कामायनी' के प्रथम सर्ग मे, माघ के 'शिशुपालवध' के तीसरे सर्ग मे, या बायरन (Byron) की 'Ocean' तथा कालरिज (Coleridge) की Ancient Mariner नामक कविताओ मे। (२) प्रकृति के रूपों व व्यापारों पर कवि की आँख टिकी है जो सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा सूचित होता है। यह बात अप्रस्तुत-विधान में भी उपमान खड़े करते समय झलकती है। (३) कवि कहीं २ प्राकृतिक वस्तुओ की गणना मात्र कर देता है जिससे मन पर कोई रमणीय चित्र नही उतरते। केशव (रामचन्द्रिका, तपोवन वर्णन) हरिऔध (प्रियप्रवास, ६ सर्ग) व रामनरेश त्रिपाठी ('पथिक') मे भी यह प्रवृत्ति है। मिल्टन (Milton) मे भी है किन्तु फिर भी सुन्दर (दे० पृष्ठ ८१)। (४) कवि कहीं कही वस्तु-वर्णन में अन्य ओर भी सकेत करता है, वस्तु तक ही हमारी धारणा सीमित नहीं रखता। इससे कवि का साम्प्रदायिक रहस्य-प्रेम झलकता है। जैसे सिंहलगढ़ के इस वर्णन मे—

नव पौरी बाँकी नव खंडा। नवौ जो चढ़ै जाइ बरम्हंडा॥
पौरी नवौ बज्र के साजी। सहस सहस तहँ बैठे पाजी॥
नव पौरी पर दसवँ दुवारा। तेहि पर बाज राज-घरियारा॥
गढ़ अस बाँक जैसि तोरि काया।

जायसी ने प्रकृति का प्रयोग रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति के लिए भी किया है। किन्तु यह भावना स्वाभाविक कौतूहल या जिज्ञासा-मूलक- जैसी केनोपनिषद (१।१), श्वेताश्वतरोपनिषद, ऐतरेयोपनिषद् (३।१) तथा 'प्रसाद' की 'कामायनी' (आशा सर्ग) या 'पंत' के मौन-निमन्त्रण (पल्लव) आदि में मिलती है—न होकर चराचर जगत् में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब या प्रकाश (जिसे उर्दू-फारसी वाले खुदा का 'नूर' कहते हैं) के आभास से उद्भासित है। पद्मावती के इस सौन्दर्य-वर्णन से—

रवि, ससि, नखत दिपहि ओहि जोती। रतन पदारथ, मानिक, मोती॥
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥

नयन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग हीर॥

ईशोपनिषद् के 'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।' का ही भाव-प्रधान व कल्पनापूर्ण प्रतिफलन है।

जायसी ने प्रकृति में चेतना का आरोप करके उसका मानवीकरण भी किया है। हीरामन तोता व नागमती के प्रति अर्द्ध-रात्रि में सहानुभूति व्यक्त करने वाला पक्षी (आधी रात विहंगम बोला) इस प्रसंग में दृष्टव्य है।

कृष्ण भक्ति शाखा

कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियों का काव्य भी प्रकृति के वैभव से सम्पन्न है। उनके काव्य के नायक श्रीकृष्ण यमुना-तट के निवासी हैं, इस नाते वहाँ की प्राकृतिक परिस्थिति का विशद चित्रण स्वाभाविक ही था। किन्तु इन कवियों को प्रकृति कृष्ण के नाते ही प्रिय है, उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं। प्रकृति मुख्यतः उद्दीपन व अलंकार रूप में गृहीत हुई है। वह गोपियों को विरह में जलाने वाली व संयोग में आनंदित करने वाली है। देखिए, सुखदायी प्रकृति गोपियों के लिए क्या हो गई है—

सीता के हरण और राम के विरह पर प्रकृति की यह दशा हो जाती है—

> आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
> अलि-खग-मृग मानो कबहुँ न हे।

जहाँ कथा-प्रवाह के अनुरोध आदि से प्रकृति को राम के प्रभाव से प्रभावित बनाना इष्ट नहीं, वहाँ कवि, जायसी की तरह ही बात को यों चलती करता है—

> आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया।

जो हो, फिर भी कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ कवि की भावना प्रकृति के शुद्ध क्षेत्र में कुछ देर के लिए रमी है। कवि का स्वतन्त्र निरीक्षण भी सूचित होता है। यथा--

> मोहन स्याम जलद मृदु घोरत धातु रंगमगे सृंगनि।
> × × ×
> तल सुन बिमल झिरनि झलकत नभ बन-प्रतिबिंब तरंग।
> —गीतावली

पशु-प्रकृति की भी कवि को गंभीर पहचान है। कौशल्या राम के घोड़ों को देखकर विलाप करती है—

> आली! हौं इन्हहि बुझावौं कैसे?
> बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे।
> अंग लगाइ लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे।
> लोचन सजल, सदा सोवत-से, खान पान बिसराए।
> चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम सुरति उर आए॥

कहीं कहीं साधारण जीव-जन्तुओं पर भी कवि की दृष्टि टिकी है— "हौं तो भौंतुवा भौंर को हौं।" भौंतुवा वर्षाकाल में पानी पर चक्कर काटने वाला काले रंग का एक कीड़ा होता है। 'चींटियों की सी काली पाँति' पर हमारे कवि पंत जी की ही दृष्टि नहीं गई। उनसे पहले तुलसी 'अति रसज्ञ सूक्ष्म पिपीलिका' को बूरा मिला कर देख चुके हैं।

स्वयं ही शोकमग्ना है। यदि यही बात ठीक है तो तुलसी की प्रकृति चेतन भी कही जायगी। जड़ तो है ही —

हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी॥

राम के इस प्रश्न पर प्रकृति (कालिदास के पुरुरवा के प्रश्न को सुन कर मौन रहने वाली प्रकृति की ही तरह) मौन रहती है। प्रकृति को ऐसे स्थलों पर चेतन भी पाते हैं—

आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि-खग-मृग मानों कबहुं न हे।
मुनि न मुनिबधूटी उजरी परनकुटी,
पंचवटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे॥

परम स्नेही हृदयों का किसी भावी अनिष्ट-भावना से आशंकित या चिंतातुर हो जाने पर वातावरण में खिन्नता या उदासी का अनुभव करना मनोविज्ञान-सम्मत है। तुलसी ने स्वयं 'कुसगुन' शब्द का प्रयोग किया है। अतः श्रीहीन प्रकृति को भरत के हृदय की छाया माना जाना भी अनुचित नहीं जान पड़ता।

प्रकृति का उपयोग उपदेश करने के लिए भी कविता में होता आया है। उदाहरणार्थ—

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥

अलंकार रूप में भी कवि ने प्रकृति का भरपूर प्रयोग किया है। उपमान पक्ष में, सूर की ही तरह, प्रकृति के उपकरणों का चयन किया गया है। कोई कोई उपमान प्रतीकत्व लिये हुए भी है—'जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी।' ज्ञानी संतों ने रात्रि को अज्ञान या सांसारिकता के रूप में पर्याप्त रूप से ग्रहण किया है। 'चातक' तो तुलसी के लिए निःस्वार्थ प्रेम का प्रतीक है ही।

प्रकृति-वर्णन मे देश का भी ध्यान नहीं रखा, केवल वस्तु-परिगणन मात्र कर दिया—

> तरु तालीस, तमाल, ताल हिंताल मनोहर ।
> मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेल बर ॥
> एला ललित लवंग, संग पुंगीफल सोहै ।
> सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै ॥

सूर्योदय वर्णन तो कुछ है भी—

> अरुण गात अति प्रात पद्मिनीप्राणनाथ भय ।
> मानहु केशवदास कोकनद कोकप्रेममय ।
> परिपूरण सिंदूरपूर कैधौ मंगलघट ।
> किधौं शक्र को छत्र मढ्यो मानिकमयूखपट ॥
> कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को ।
> यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को ॥

किन्तु पाँचवी पंक्ति मे ही सादृश्य के लिए कपाल उपमान लाकर सब गुड-गोबर कर दिया ।

दण्डकारण्य के वर्णन को तो श्लेष के चमत्कार मे बिल्कुल ही नष्ट कर दिया । शब्द-साम्य के कारण बेर भी भयानक हो गया—

> शोभत दंडक की रुचि बनी । भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी ॥
> सेव बड़े नृप की जनु लसै । श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै ॥
> बेर भयानक सी अति लगै । अर्क-समूह जहाँ जगमगै ॥
> नैनन को बहुरूपन ग्रसै । श्री हरि की जनु मूरति लसै ॥

पञ्चवटी के वर्णन की कैसी मिट्टी खराब की है—

> सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
> निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी, जग जीव यतीन की छूटी तटी ॥
> अघ-ओघ की बेरी कटी बिकटी, निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी ।
> चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी, गुण धूरजटी बनपञ्चवटी ॥

रसखान को प्रकृति प्रिय है पर श्रीकृष्ण के नाते ही—

> रसखानि कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन, बाग, तड़ाग निहारौं।
> कोटिक हौं कल-धौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं॥

पद्माकर ने 'जगद्विनोद' मे जो षट्-ऋतु वर्णन किया है वह भी पर्याप्त सुन्दर है।

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का प्रयोग अधिकतर उद्दीपन के रूप मे ही किया है। एक दो उदाहरण पर्याप्त होगे—

> ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भलो,
> हरि सो हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज है।
> किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की
> डारन पै फूलन अँगारन के पुंज है॥—पद्माकर

अथवा,

> कहा कहिये सजनी रजनी गति चंद कटै कि जिये गहि काटै।
> असीनिधि सौ चित-चोर अबै हिम जानि जगाय दै आगनि डाटै।
> सु या गति लोग न जानति है घन आनन्द जान बिछोह की गाँटै।
> वियोग मे वा गति बाढ़नि जैसी कछू न रहै जु सँजोग हू बाढ़ै।—घनानंद।

रहीम, गिरधरदास आदि कवियो ने प्रकृति के कार्य-व्यापारो के वर्णन द्वारा प्रभावशाली ढग से उपदेश भी दिये है पर उनमे काव्य-सौन्दर्य बहुत कम है।

रीतिकाल की प्रकृति सम्बन्धी कविता का स्वरूप

रीतिकाल की अधिकाश कविता का लक्ष्य स्थूल मनोरञ्जन और चमत्कार ही रहा। विलासी राजाओ के लिए ही विशेषकर लिखी जाने के कारण शृंगार की अनूठी अनूठी उक्तिया ढूंढ निकालने मे ही कवि-कर्म समझा गया। विभाव-पक्ष सर्वथा गौण हो गया। "उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो की योजना भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए ही होनी चाहिए अतएव ये अपर वस्तुएं प्रस्तुत के समान ही

ही सदा देखना उन कवियों का दृष्टि-संकोच ही कहा जा सकता है। बाह्य सौन्दर्य्य को स्वतन्त्र आलम्बन मान कर उसका वर्णन करने में वे कभी प्रवृत्त न हुए।

आदर्शों से सम्बन्ध रखने वाला भी होता है। जब कोई कवि या युग-काव्य 'रति' की इस व्याप्ति तक अपना प्रसरण दिखाता है उसी अनुपात में हम उस कवि या युग-हृदय का विकास आंकने में समर्थ होते हैं। प्रकृति-सम्बन्धी रति या प्रकृति-प्रेम हमारे हृदय के रति-वृत्त का एक महत्वपूर्ण खंड है। इस प्रेम को वाणी देना सम्पूर्ण हृदय की पूर्णता को वाणी देने का एक अनिवार्य अंग है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में मुख्यतः कांताविषयक व देवताविषयक रति की ही अभिव्यक्ति हुई। रति के शेष रूपों की पुष्कल अभिव्यक्ति का युग मुख्यतः बीसवीं शताब्दी में ही आया। हमारा विषय प्रकृति तक ही सीमित है, इसलिए यहां केवल उसी का विवेचन उपयुक्त होगा।

भारतेन्दु युग से काव्य-क्षेत्र में प्रकृति-सम्बन्धी नवीन चेतना का जो संचार हुआ उसके कारणों पर कुछ विचार करना आवश्यक है।

प्रकृति-प्रेम के पुनरावर्त्तन के कारण।

भवभूति के बाद भारतीय साहित्य में प्रकृति-प्रेम की जो उल्लासमयी सहज-प्रसन्न धारा शताब्दियों के लिए सूख गई थी या अन्तःसलिला हो चुकी थी, वह फिर किन कारणों से प्रकट हुई? प्रकृति-प्रेम की नैसर्गिक भावना के पुनरावर्त्तन के कुछ कारण ये जान पड़ते हैं—(१) अंग्रेजों से मुक्त होने के लिए देश-प्रेम व राष्ट्रीयता का व्यापक आंदोलन चल रहा था। पर देश के प्रति सच्ची प्रेम-भावना जगाने के लिए देश के मोहक रूप-सौन्दर्य — समुद्र, पहाड़, नदी-नाले, पेड़, पौधे, फल-फूल, पशु-पक्षी — का वर्णन करना समयोपयुक्त था। भारत माता की मधुर मूर्ति पर रीझे बिना, उसकी शोभा को देख कर उसका गुणगान सुन कर, रसमग्न हुए बिना देश-प्रेम कैसा? (२) काव्य के सदा दो ही बड़े विषय रहे हैं—मानव और प्रकृति। मानव-प्रधान काव्य हिन्दी में बहुत हो चुका था। प्रकृति-प्रधान काव्य अब कवि की कल्पना व रसनासक्ति की प्राकृतिक क्षुधा थी। (३) देश में अंग्रेजी

असंतुष्ट होकर अपनी ही एक नवीन मानसी सृष्टि के निर्माण में लीन हो जाते हैं। उनकी मुक्त कल्पना स्वच्छन्द उड़ान के लिए प्रायः चार वीथियाँ पकड़ती है – (क) प्रकृति का स्वच्छन्द रमणीय क्षेत्र, (ख) अपना या देश का स्वर्णिम अतीत, (ग) भविष्य का स्वप्न-दर्शन, व (घ) अन्तर्मुखता तथा मनोमंथन। प्रसाद अतीत में रमे और पंत भविष्य में विचरे। महादेवी जी मनोमंथन में लीन रहीं। पर प्रकृति के क्षेत्र में स्वच्छन्द विचरण अधिकांश छायावादी कवियों का शाश्वत लक्षण रहा। (७) भारतीय संस्कृति के उपासकों ने वस्तु-मूलक भौतिकता-प्रधान पाश्चात्य संस्कृति के घातक प्रभावों व अशांति से बचाने तथा आत्मिक शांति व मनोपशायिनी सात्विक भारतीय संस्कृति का महत्त्व हृदयंगम कराने के लिए प्राचीन भारतीय वन-जीवन, आश्रम-जीवन व ग्राम जीवन का सौन्दर्य विशेष अनुराग से अंकित किया। गोल्डस्मिथ की तरह 'प्रेमघन' ने भी गाँवों के उजड़ने व नगरों के बसने पर मार्मिक उद्गार व्यक्त किये हैं। श्रद्धेय गुप्त जी की 'अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है!' नामक कविता प्रसिद्ध ही है। स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ, गांधी व रवीन्द्र ने उस आश्रम-जीवन की भावना के प्रति अत्यन्त मोह प्रकट किया। हिन्दी कवि पर भी उस भावना का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

प्रकृति-सम्बन्धी ये प्रवृत्तियाँ भारतेन्दु काल में आरम्भ होकर उत्तरोत्तर विकसित होती गईं। भारतेन्दु ने यद्यपि सूक्ष्म निरीक्षण की ओर अपनी रुचि बताई किन्तु उनका प्रकृति चित्रण अलंकार-प्रधान ही है, (उदाहरणार्थ, उनकी 'गंगा-वर्णन' व 'यमुना वर्णन' नामक कविताएँ)। उस युग में पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने प्रकृति के प्रति बहुत सजीव प्रेम प्रकट किया। उनके बाद पं० श्रीधर पाठक, ठाकुर जगमोहन

प्रकृति-काव्य का विकास-क्रम

प्रतिष्ठित होता है। यहीं कवि की प्रकृति-सम्बन्धी चेतना की सप्राणता परखी जाती है। यदि कवि ने आंख खोलकर, कान खोल कर, हृदय खोल कर, अनेक रूप-रंग व ध्वनियों वाली प्रकृति का दर्शन न किया, उसके साथ उसका तादात्म्य स्थापित नहीं हुआ, तो अन्य विषयों में भी उसका दौर्बल्य झलक जायगा—न तो उसका अप्रस्तुत-विधान (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि में) मौलिक निरीक्षण-जन्य होगा, न रहस्य-भावना में स्वाभाविकता, तीव्रता व सरसता होगी, और न पृष्ठ-भूमि व वातावरण का निर्माण ही प्रभावशाली रूप में हो सकेगा। पर हम यह कैसे जानें कि कवि प्रकृति के सौन्दर्य में डूब गया है, उस की अन्तःसत्ता प्रकृति की चेतना से स्वतःस्फूर्त हो उठी है, और उसके प्राण में प्रकृति का सारा उल्लास, मुक्ति का आनंद व उन्माद उच्छ्वसित हो उठा है। हां, उसकी पहचान है। और वह पहचान यह है कि कवि जहां प्रकृति के पदार्थों, रंगों, ध्वनियों, गंधों व स्पर्शों का पूर्ण तल्लीन होकर अनुभव करे और प्रस्तुत दृश्य तथा अपने प्रकृति प्रेम को समर्थ भाषा द्वारा पाठक या श्रोता के हृदय में प्रेषित करे। इस के साथ ही प्रकृतिमूलक दार्शनिक भावना भी काव्य की पद्धति से रसात्मक बना कर व्यक्त की जा सकती है। ऐसे काव्य के अनुशीलन से जहां हमें हमारा हृदय पूर्णतया रससिक्त होता हुआ जान पड़ेगा, वहीं यह भी पक्का प्रमाण मिल जायगा कि कवि प्रकृति का सच्चा प्रेमी है। जिस अनुपात से हम कवि को प्रकृति में निमज्जित पायेंगे, उसी अनुपात में हम उसके प्रति आकृष्ट होंगे। प्रकृति के इस आलम्बन रूप की अब हम विस्तृत समीक्षा करेंगे।

(क) रूप-विस्तार

पदार्थों का रूप-दर्शन

सबसे पहले कवि को प्रकृति के विशाल भाण्डार के पदार्थों पर दृष्टि ले जाना आवश्यक है। ये पदार्थ तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—

बुद्धचरित, सिद्धार्थ, नूरजहाँ, हल्दीघाटी, पथिक, स्वप्न, मिलन, पंचवटी, कुणाल, सिद्धराज, आदि—में ही अधिक हुआ है। मुक्तक काव्य व गीतों में या तो उसकी झलक मात्र दी गई है या प्रकृति के प्रति अनुराग की व्यंजना हुई है। कहीं-कहीं वस्तुओं के नाम मात्र ही गिना कर रस्म अदाई हो गई है। यथा —

> जम्बू अम्ब कदम्ब निम्ब फलसा जम्बीर औ आँवला।
> लीची दाडिम नारिकेल इमिली औ शिंशपा इंगुदी।
> नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
> श्रेणी-बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े॥ (प्रियप्रवास, ९)
> पनस, रम्भा, मदन मल्लिका, पल्लव गुलाब- मुकुल का।
> रसाल कुन्द-कली, पिक किंशुक, नरगिस, मधुकर-कुल का। (पथिक)

पर ऐसे स्थल कम ही हैं।

अधिकांश कवियों ने हरे-भरे मैदानों के सौन्दर्य पर ही दृष्टि डाली है। पर पर्वत व मरु-भूमि का भी सौन्दर्य्य विलक्षण व मोहक होता है। प्रसाद, पंत, 'हरिऔध', उदयशंकर भट्ट व रामचन्द्र शुक्ल ने पार्वतीय सौन्दर्य्य का सुन्दर चित्रण किया है। 'कामायनी' के चिंता, आशा, स्वप्न, रहस्य व आनंद सर्गों में हिमालय पर्वत का मनोमोहक चित्र अंकित हुआ है। पंत जी तो हिमालय के साथ एकाकार ही हो गये हैं। इस दृष्टि से उनकी 'स्वर्ण किरण' की 'हिमाद्रि' कविता हिन्दी-साहित्य की एक अनमोल निधि है। 'पल्लव' का पर्वत-प्रदेश का सौन्दर्य्य देखिए –

> पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश, पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
> मेखलाकार पर्वत अपार, अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
> अवलोक रहा है बार बार, नीचे जल में निज महाकार;
> जिसके चरणों में पला ताल दर्पण सा फैला है विशाल!!
> गिरि का गौरव गाकर झर झर, मद से नस नस उत्तेजित कर
> मोती की लड़ियों से सुन्दर झरते हैं झाग भरे निर्झर।

आभा में जाती हुई ऊँट की कतारें, जेठ की लू व चमकती चाँदनी रातों, और झाड़ियों पर चमकती हिम-किरणों का सौन्दर्य प्रभु के सौन्दर्य-भंडार की अनमोल निधियाँ हैं। हर्ष की बात है कि पं० पतराम शर्मा गौड़ 'विशद' ने 'रेगिस्तान', श्री चन्द्रसिंह ने 'बादली' व 'लू' (राजस्थानी), तथा श्री परमेश्वर 'द्विरेफ' ने 'मरु के टीले' व 'धूल के फूल' नामक काव्यों की रचना करके अपनी विकसित सौन्दर्य-भावना का परिचय दिया है। 'विशद' जी के 'रेगिस्तान' काव्य की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

> बालू की चंचल लहरों पर लिखे हुए ये कोमल गान।
> चपल हिलोरों पर झूला कर—झूला दिये मैंने निज गान॥
> जीना मिथ्या, मरना मिथ्या, मृत्यु-अमरता में गम्भीर—
> ये ऊँचे मरु के टीले, ज्वार उदधि में भी गम्भीर॥
> शरद काल का शुभ्र बहुधा है सच्चे मोती से चूर।
> जमा हुआ था चन्द्र ज्योत्स्ना, अथवा बिखरे हुए कपूर।
> धूल डाल दी तुमने उन पर, खिले हुए जो केसर-क्यार!
> जल-विहीन काश्मीर शुष्क तुम! बिखरा किस नन्दन का छार॥
> भूरे भूरे टीलों में जब उषा रानी, होली का रंग—
> छिड़ा रहा, टीले के पीछे झाँक रहा था नव-मयूर॥
> यहाँ सितारों का क्या कहना, कौन बनाता है अंगूर?
> थके दृग को अमृत जैसा, बतलाते कविगण भरपूर॥

कवियों की दृष्टि मैदानों के सौन्दर्य की ओर सब से अधिक गई है इसलिए इनका वर्णन बहुत विस्तारपूर्वक हुआ है। पेड़-पौधे, लता-पत्र, फल-फूल, खेत-कुंज, नदी-नाले, पशु-पक्षी आदि का जो वर्णन हुआ है उसको देख कर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी-कवि प्राचीन निर्जीव सीमाओं को तोड़ कर स्वच्छन्दता-पूर्वक आगे बढ़े हैं और अपने दृष्टि-विस्तार का सुन्दर परिचय दिया है। आधुनिक काल में प्रायः मुक्तक रचनाएँ ही अधिक हुई हैं अतः इनमें प्राचीन प्रबन्ध-काव्यों के उपयुक्त विस्तृत वर्णन का बहुत कम अवसर सम्भव हो सका

तारा भाये हैं। 'दिनकर' बांसों की हरियाली (रेणुका) पर फ़िदा है तो 'बच्चन' गुलमुहर (मिलन यामिनी) पर। 'प्रसाद' को देवदारु प्रिय है। निराला खिरनी के पेड़ (आराधना) पर रीझे हैं और राम-नरेश त्रिपाठी चिनार (स्वप्न) व खजूर (पथिक) पर। शुक्ल जी महुए को देख कर मस्त हुए हैं और गुरभक्तसिंह 'भक्त' जंगल की झाड़ियों व अन्य सामान्य पेड़ पौधों पर ('वन श्री' व नूरजहाँ)। 'नेपाली' देहरादून के बेरों के लिए रूमाल बिछाते हैं तो 'विशद' जी रेगिस्तान के टीटण भूटिया नामक झाड़ों पर लट्टू हैं।

प्रकृति के रूखे, सामान्य व शान्त-एकान्त स्थानों का वर्णन पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ('प्रेमघन सर्वस्व' पृ० २, ६, ५०) ने भी पूर्ण सजीवता व रसात्मकता के साथ किया है। प्रकृति के भीषण रूपों के प्रति भी कवियों ने अपनी सौन्दर्य-भावना का गूढ़ परिचय दिया है— जल प्लावन (कामायनी, १) झंझावात व उपल वृष्टि (प्रिय-प्रवास २, कामायनी, १) व परिवर्तन का भीषण स्वरूप ('पल्लव' की 'परिवर्तन' शीर्षक रचना) भी अंकित हुआ है।

लता-बेल व छोटे-बड़े पौधे भी इस विस्तार की सीमा में समाविष्ट हैं। 'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' में साहित्य में प्रसिद्ध लतायें गिनाई हैं—माधवी लता, लवंग लता, प्रियंगुलता, रक्तिकालता, गुंजिका आदि। 'प्रसाद' जी को माधवी व लवंग लताएं ही आकर्षित करती हैं किन्तु नये-नये झाड़-पौधों व बेलों की भी ओर कवियों की दृष्टि उठी है। गुप्त जी को करौंदी-कुंज (साकेत, ८) भाया है। 'दिनकर' को 'वन-तुलसी' (रेणुका) का ध्यान मधुर लगता है क्योंकि हल्की पुरवैया उसकी गन्ध लिये आ रही है। शुक्ल जी भड़भाड़ या सत्यानाशी की झाड़ियों को गौर से देखते हैं। पन्त जी व 'विशद' जी तरबूजों व मतीरों की बेलें भी विस्मृत नहीं करते। गुप्त जी देहात के घास-फूस के छप्परों पर फैली लौकियों को भी सात्विक स्नेह से देखते हैं।

है, इसमें कोई सन्देह नहीं। 'अप्सरा' की सूक्ष्म सौन्दर्यमयी दिव्य सृष्टि करनेवाले पंत भी खेतों की हरी-भरी ताजी शाक-सब्जियों का वर्णन बड़े हुलास से करते हैं। आलू, गोभी, बैंगन, मूली, पालक, धनिआँ, लौकी, सेम, टमाटर, मिर्च, गेहूँ के बाल, अरहर, सरसों आदि को देखकर वे लहलहा उठे हैं। पंत जी को नित्तीदार अमरूद भी बहुत पसन्द जान पड़ते हैं।

पशु-पक्षी भी हमारे जीवन के अभिन्न अंग हैं। उनसे हमारा आदिम रागात्मक सम्बन्ध है। गुप्त जी ने पेड़ से टूट कर गिरे पत्तों के स्पर्श के कारण देह में आई हुई फुरहरी वाले घोड़ों के वर्णन में सूक्ष्म निरीक्षण का सुन्दर परिचय दिया है (साकेत ८)। 'नेपाली' ने पेड़ों में क्रीड़ा करती गिलहरियों की गति-विधि को मनोयोगपूर्वक अंकित किया है (उमंग)। 'दिनकर' ने साँझ में रोमंथन करती व हरी घास को खुरों से रौंदती आती गायों का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है (रेणुका)। पंत ने तूल सी मार्जार-बाला (ग्रन्थि) को देखकर व बादलों की उपमा मेमनों के बाल से देकर (पल्लव) अपना पशु-प्रेम सूचित किया है। उदयशंकर भट्ट चमरी मृग के प्रति आकर्षित हैं। शुक्ल जी घुड़की देने वाले बन्दर से भी नाराज नहीं होते। राम-भक्त-कवि तुलसी के आलोचक, हनुमान के अनुचर पर रीझ कर अपना प्रेम व्यक्त करे, यह सर्वथा उचित ही है। 'हरिऔध' जी ने भवभूति की परम्परा में रह कर भीषण व भयावह प्रकृति के प्रति भी अपनी रागात्मकता दर्शाई है। उन्होंने प्रिय प्रवास (सर्ग ९) में लाल मुँह के लम्बी पूछों वाले बन्दरों, चल-चक्षु चीतों, पृथुलांग गौरविशों व बड़े बलवान व विशाल बैलों का भी जिक्र किया है।

पक्षियों में पपीहा, मोर, कोयल, तोता, मैना, कुररी, क्रौंच, खंजन, सारस, चकोर आदि के अतिरिक्त कबूतर (नरेन्द्र शर्मा ; प्रवासी के गीत, व 'साकेत') काकातुआ (प्रिय प्रवास) फुलसुँघी (पंत : ज्योत्स्ना),

नाग (साकेत), बगुले, सुर्खाब, मनमोटी, सामुद्रिक, धोबिन, अबाबील, टिटहरी, बया, पीलो (पंत : युगवाणी) आदि अनेक पक्षियों तक भी हृदय की रागात्मकता का विस्तार हुआ है।

चींटी ('गुंजन', युगवाणी), मकड़ी, (साकेत ६) व 'मीन' भी कवियों के उदार निरीक्षण के अधिकारी रहे हैं।

समुद्र व झीलों का वर्णन हमारे आधुनिक काव्य में कम ही मिलता है। 'कामायनी' का प्रलय के जल-प्लावन का अनूठा वर्णन तो प्रसिद्ध ही है। 'प्रसाद' ने लहर में 'पेशोला की प्रतिध्वनि' में उदयपुर की पिछोला झील का व 'कामायनी' के अन्तिम सर्ग में मानसरोवर का सुन्दर वर्णन किया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक के आरम्भिक सर्गों में समुद्र का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। वस्तुतः इस काव्य में समुद्र के विस्तृत वर्णन का पर्याप्त अवसर निकल सकता था पर त्रिपाठी की रुचि [illegible] की ओर ही अधिक थी।

इच्छा से उड़ने वाले संपाती की भांति नहीं।" पंत जी का भी आग्रह हुआ—"देखो भू को, पुण्य प्रसू को।' और 'दिनकर' ने भी गाया—

> व्योम कुंजों की परी अयि कल्पने, भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं,
> आ न सकते हम तुम्हारे पास तो, भूमि पर ही आ बसा उनका यहाँ। —रेणुका

जो हो, हमारे कवियों ने आकाश की विशाल चित्रपटी के चित्र भी ध्यानपूर्वक देखे। प्रसाद (कामायनी), पंत (युगवाणी, ग्राम्या), और निराला (अनामिका) ने मुक्त आकाश के प्रति प्रेम व्यक्त किया। पंत, निराला व भगवतीचरण वर्मा ने बादलों का विस्तृत सूक्ष्म वर्णन किया। इन्द्र-धनुष का सौन्दर्य्य भी देखा गया किन्तु वर्ड्सवर्थ के जैसे उल्लास से नहीं। प्रसाद ने 'सुरधनु-रंजित नव जलधर' को देखा व पंत ने उसकी अनेक रूपों में कल्पना की (पल्लव : 'बादल' नामक कविता)। नीहारिका और स्वर्गगा का सौन्दर्य्य महादेवी व पंत ने विशेष रूप से अंकित किया। प्रसाद, पंत, आरसीप्रसाद सिंह आदि कवियों ने चांदनी के प्रति मधुर-कोमल भावनाएं व्यक्त की। यों यह विषय व्यापक व सामान्य महत्व का है। श्री 'गुलाब' खण्डेलवाल ने 'चांदनी' में अपनी तत्सम्बन्धी लगभग ५० कविताएं संगृहीत की हैं। श्री राजनारायण बिसारिया की भी चाँदनी सम्बन्धी भावना बहुत कोमल है। संध्या का पंत (युगवाणी, गुंजन), निराला (परिमल) व प्रसाद (कामायनी) आदि कवियों ने सुन्दर वर्णन किया है। उषा और प्रभात पर कौन कवि नहीं लिखता किन्तु प्रसाद (लहर : बीती विभावरी जागरी) और पंत के स्वर में उषा की भावना का जो उल्लास फूटा है वह उत्फुल्लकारी है।

प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र पर आधुनिक हिन्दी-कवियों की दृष्टि कितनी विस्तृत रही है, इसका उपरोक्त विवेचना से कुछ अनुमान हुआ होगा। किन्तु कवि के इस विस्तार मात्र से ही हम संतुष्ट नहीं हो सकते। विस्तार के साथ कितना और कैसा गांभीर्य है, यह देखना भी इष्ट है। उसी से प्रतीत होगा कि कवि के हृदय में प्रकृति के प्रति

इच्छा से उड़ने वाले
हुआ—"देखो भू को,

व्योम कुंजों की परी
आ न सकते हम तुम्हा

जो हो, हमारे कवि
भी ध्यानपूर्वक देखे।
और निराला (अनामि
पंत, निराला व भगवती
किया। इन्द्र-धनुष क
जैसे उल्लास से नहीं।
व पंत ने उसकी अनेक
कविता)। नीहारिका
विशेष रूप से अंकित
कवियों ने चांदनी के प्रति
विषय व्यापक व सामान्य
ने 'चांदनी' में अपनी
की है। श्री राजनारायण
वहुत कोमल है। संध्या का
व प्रसाद (कामायनी) आदि
और प्रभात पर कौन कवि न
विभावरी जागरी) और पंत
उल्लास फूटा है वह उत्फुल्लकार

प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र पर
कितनी विस्तृत रही है, इसका उपर
होगा। किन्तु कवि के इस विस्तार
सकते। विस्तार के साथ कितना और
इष्ट है। उसी से प्रतीत होगा कि कवि

है। वसन्त पवन मे आम्र मंजरियाँ लहकती दिखाई पड़ती है। आकाश मे बादल कभी तो मृग से चौकड़ी भरते है, कभी कछुए से रेंगते है, और कभी झूम-झूम कर उमड़-घुमड़ कर संसार को जलमग्न करने का संकल्प लिए-से दौड़े आते है। पक्षियों के अंगो मे रोमांच व स्पन्दन होते है, फुरहरी आ जाती है, अज्ञात आनन्द-तरंग मे उनकी काया थिरकने फुदकने लगती है। तितलियां लहलहाती हैं। कभी सेमल की रूई का एक तनु अपनी नींद-भरी गति से पवन-लहरियों पर तैरता-फिरता दिखाई पडता है। जल की लहरे मचलती हुई, फिसलती हुई बढती है। बिजली क्षण भर मे कौंध कर लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार और भी सैकड़ो प्रकार की गति विधियां होती है। कवि जब हमे इन सूक्ष्मताओ का परिचय देता है तो हम उसकी सूक्ष्म निरीक्षण की प्रतिभा से प्रभावित होते है और प्रस्तुत चित्र के अनुशीलन मे आनंदित होते है। 'प्रसाद' जी ने 'कामायनी' मे प्रलय काल के समुद्र की, 'रत्नाकर' ने 'गगावतरण' के समय गगा की व 'निराला' (बादल राग) भगवतीचरण वर्मा (मधुकण) तथा पत (बादल) ने वर्षारंभ के मदोन्मत्त बादलो की प्रचण्ड गति-विधि का बहुत ही मार्मिक अकन किया है। पत जी अपने दृश्य को सुस्थिर होकर, बहुत धैर्यपूर्वक आँख गडा कर देखने मे पटु है। वर्षान्त के रजत-धवल, झीने, जालीदार फूले-फूले धुनी रूई से बादलों (देखिए 'बादल'), चादनी रात मे नदी की लहरों ('नौका विहार') व पर्वत प्रदेश के क्षण क्षण परिवर्तित दृश्यो ('पल्लव' की 'उच्छ्वास' तथा 'स्वर्ण किरण' की 'हिमाद्रि' शीर्षकिनी कविताएँ) को जिस तल्लीनता व सूक्ष्मता से देखा है वह बहुत प्रशसनीय है। 'नेपाली' गुरुभक्तसिह, शभूनाथ 'शेष', 'नीरज', व राजनारायण बिसारिया आदि कवियो ने भी इस दिशा मे अच्छी रुचि प्रदर्शित की है। कुछ उदाहरण देना ठीक होगा—

धारा बह जाती, बिम्ब अटल। (कामायनी : 'दर्शन' सर्ग)

माधुर्य उत्पन्न होता है जो रसानुभूति में सहायक होता है। एक तो यह कहना कि "सन्ध्या के आकाश में बादल फैल गए।", और फिर यों कहना कि "डूबते हुए अरुण सूर्य की लालिमा से, क्षितिज से कुछ ऊपर हट कर फैले हुए बादलों के सूर्योन्मुख अंग लाल-से हो गए।" तो दोनों में अन्तर है। एक में कवि की वस्तु के प्रति तल्लीनता लक्षित नहीं होती, और दूसरे में होती है। केवल इतिवृत्तात्मक कथन से काम चलना काव्य नहीं, पाठक के हृदय में दृश्य वैसा का वैसा उतरना चाहिए जैसा बाहर है। अंग्रेज कवि टेनिसन् के विषय में कहा जाता है कि उसने प्रकृति क्षेत्र के सब रंगों और ध्वनियों का वर्णन किया। आर्नल्ड, रोजॅटी व कीट्स में भी यह प्रवृत्ति विशेष प्रकार से लक्षित होती है। वर्ण-व्यंजना के सुन्दर उदाहरण ये हैं :--

विद्रुम औ मरकत की छाया,
सोने चाँदी का सूर्यातप!
हिम-परिमल की रेशमी वायु
शत रत्न छाय, खग चित्रित नभ।

अथवा, गहरे धुँधले, धुले साँवले
मेघों से मेरे भरे नयन। × × ×

और, × तुहिन वन में आई सुकुमारि,
तुम्हारी स्वर्ण ज्वाल सी तान (सोने का गान)

आम के बौरों और भौंरों के रंगों का कैसा सूक्ष्म निरीक्षण है —

रुपहले सुनहले आम्र बौर
नीले, पीले औ ताम्र भौंर। (गुंजन)

अथवा, देखता हूँ जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कला (पल्लव)

—पन्त

किया गया है। इसी प्रकार आर्नल्ड के चित्र भी वर्ण-विधान की दृष्टि से बहुत सम्पन्न है। देखिए :—

Oft thou hast given them store
Of flowers—the frail—leaf'd, white anemone.
Dark bluebells drench'd with dews of summer eves.
And purple orchises with spotted leaves—
But none has words she can report of thee.
(Scholar Gipsy)

ऊपर के चित्र मे बैंगनी फूलो और लताओ की धब्बेदार पत्तियो का, श्वेत फूलो का, नीले फूलो का जिनकी पँखुरियाँ ग्रीष्म की सन्ध्या के समय की गिरी ओस-बिन्दुओ मे भीगी है, अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन है। उन्ही का एक सुन्दर चित्र और देखिए—

Through the thick corn the scarlet poppies peep.
And round green roots and yellowing stalks I see
Pale blue convulsions in tendrils creep , . ..
(The Scholar Gipsy)

ऊपर की पक्तियो मे कवि ने अनाज के घने पके दानो में से उनके पीछे खड़े अफीम के खूब लाल फूलो, हरी गोल जड़ो और कुछ कुछ पीले पडे डंठलो, पीलाई लिए नीले पौदो की कोमल लतरो आदि का कैसा भरा पूरा चित्र प्रस्तुत किया है।

कवि प्रकृति का अनुरागी है इसका प्रमाण हमे इस बात मे भी मिलता है कि उसकी रग-भावना कितनी विस्तृत और सूक्ष्म है। जो कवि सरसरी दृष्टि से ही प्राकृतिक रूपो को देख कर काम चलता करने है वे बेचारे काला, पीला, हरा, नीला लाल या सफेद इन मौलिक या स्थूल रगो का उल्लेखमात्र ही करके रह जाते है। पर जिन की सूक्ष्म दृष्टि रंगो के विभिन्न भेदो, छायाओं व मिश्रणों को टटोल कर ढूँढ निकालती है, वे अधिक सच्चे कवि कहे जा सकते है। प्रकृति के

संसार क्षेत्र में न जाने कितने रंगों के पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। रंगों का हृदय पर बड़ा ही गंभीर प्रभाव पड़ता है। अब तो दृश्य-चित्रण में ही नहीं, भावों का भी मूर्त व सजीव रूप खड़ा करने के लिए उन्हें रंग प्रदान करके भावना को चटकीला व प्रभावशाली बनाया जाता है। स्वर्णिम स्वप्न, इन्द्रधनुषी अभिलाषाएं, सुनहला प्यार आदि के प्रयोग में यह बात देखी जाती है। रंग-भावना के लिए अंग्रेज कवियों में कीट्स् आदि की तरह प्रीरैफेलाइट आंदोलन (Pre-raphalite movement) के अंग्रेज कवि रोजेटी आदि भी चित्रात्मकता के लिए विख्यात हैं।

हर्ष की बात है कि हिन्दी-कवियों की रंग भावना भी उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती दिखाई पड़ रही है। पंत जी इस क्षेत्र में सबसे आगे रहे हैं। 'ज्योत्स्ना' (नाटिका), ग्राम्या, युगान्त व उत्तरा आदि रचनाओं में उनकी विलक्षण व सूक्ष्म रंग-भावना के दर्शन होते हैं। 'प्रसाद', 'निराला', महादेवी वर्मा, उदयशंकर भट्ट, 'बच्चन', 'अंचल', गुरुभक्तसिंह आदि कवियों में भी रंगों के प्रति अच्छी सजगता है। रामेश्वरीप्रसाद 'पूर्ण' ने तो एक कविता में (दे०— पूर्ण संग्रह) पचीसों रंगों के नाम ही गिना दिए हैं :—

प्रभावशाली और भावोद्दीपक होते हैं कि कविता पढ़ते पढ़ते सहृदय उनकी संवेदना से आनन्दित होते हैं। उनके उच्चारण से ही ठीक वैसा नाद होता है जैसा कि अनुकृत (Imitated) ध्वनियों का। रूपाकार और वर्ण को ही ये शब्द-शिल्पी भाव-योगी, नेत्रों अथवा भावना से प्रस्तुत करने से तृप्त न हुए। जब इन्होंने अपनी प्रतिभा से नाद को भी शब्दों में बाँध लिया तब उनके भावाकुल हृदय को कुछ तुष्टि मिली।

काव्य में इस प्रकार की नाद-व्यंजना प्रभावोत्पादन की दृष्टि से भी बहुत उपयुक्त है। काव्य-रस में लीन करने वाले बाह्य साधनों में अन्त्यानुप्रास, लय और छंद-गति आदि तो हैं ही, किन्तु कभी कभी जब कवि अपने पूर्ण भावोत्कर्ष में हृदय की कोमलतम और सूक्ष्म भावना तथा गम्भीरतम अनुभूति का निकटतम बोध पाठक को कराना चाहता है तब उस अनुभूति को पूर्ण संप्रेषणीयता देने के लिए वह बाह्य कर्ण-गत ध्वनियों की भी रसमय संवेदना पाठक में उत्पन्न करता है। ऐसा करने से पाठक के हृदय का भी गम्भीर अनुरञ्जन होता है जो पूर्ण रस-प्रतीति में सहायक होती है। नाद के प्रभाव पर शेली लिखता है :—

नाद-व्यंजना पर शेली का विचार

Sounds as well as thoughts have relation both between each other and towards that which they represent, and a perception of the order of those relations has always been found connected with a perception of the order of the relation of thoughts. Hence the language of poets has ever affected a certain uniform and harmonious recurrence of sound, without which it were not poetry, and which is scarcely less indispensable to the communication of its influence than the words themselves, without reference to that peculiar order......”

Shelley : Defence of poetry (Loci-Critici-Page 401)

अंग्रेजी की कविताओं से भी इस नाद-व्यंजना के कई सुन्दर उदाहरण दिये जा सकते है, जैसे—

Moor'd to the cool bank in the summer heats,
Mid wide grass meadows which the sunshine fills
And watch the warm green-muffled cumner hills. × ×
Dark bluebells drench'd with dews of summer heats.
—Arnold

"‥ …Than thou shall hear the surly sullen bell".
—Shakespeare

"The murmurous haunt of flies on summer eves".
—Keats

"And drowsy tinklings lull the distant folds".—Gray

"….. My tough lance thrusteth sure …. × ×"
"The shattering trumpet shrilleth high……".
Tennyson

"But Linden saw another sight,
When the drum beat at dead of night,
Commanding fires of death to light
The darkness of her scenery".
—Campbell

ये तो हुए वस्तुओ की ध्वनियो की यथातथ्य व्यजना के उदाहरण। अब एक दूसरे प्रकार का नाद-सौन्दर्य्य भी कविता मे पाया जाता है।

दूसरे प्रकार की नाद-व्यंजना

जब कोई शब्द अथवा पदावली किसी नाद का यथातथ्य प्रतिनिधित्व तो नही करती किन्तु उसमे से कर्ण-मधुर लयमात्र उत्पन्न होता है तब भी वह पाठक के मन को वशीभूत करती है और उसकी वृत्तियों को काव्य-रस मे लीन करने मे सहायक होती है। इसके उदाहरण ये है :—

नारी का वह हृदय ! हृदय में सुधा-सिन्धु लहरें लेता,
बाड़व ज्वलन उसी में जल कर कंचन सा जल रँग देता।

का अनुभव होता है। पंचेन्द्रिय के विषयों के वर्णन से ही सम्पूर्ण हृदय-सत्ता रस-मग्न होती है। इसीलिए गंध की संवेदना कराना भी आवश्यक है। अधिकांश कवि आँखों के विषयों का तो वर्णन करते हैं किन्तु इस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। किन्तु जिनकी मानसिक उपस्थिति पूर्ण एकाग्र, सूक्ष्म व सजग होती है वे झट गंध के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। कालिदास, कीट्स, पंत व रामचन्द्र शुक्ल में यह गंध-भावना उच्च कोटि की है। अधिकांश कवि मीठी या तीव्र गंध की ओर तो खिंच जाते हैं पर हल्की कड़वी, खारी या ऐसी ही अन्य प्रकार की गंध की ओर ध्यान नहीं देते। समुद्र के तट पर, प्रथम वर्षा के समय हल-जुती धरती से, सावन-भादों की कड़ी धूप में जलते जंगली लता-पत्रों से, स्टेशनों या फैक्टरियों में विशेष विशेष प्रकार की गंध का अनुभव होता है। पुष्पहार, इत्र, वस्त्र, प्रभात-पवन, अनुलेपन आदि द्रव्यों से तो गंध आती ही है। कामशास्त्र में पद्मिनी स्त्रियों के अंगों से निकलने वाली गंध का भी वर्णन हुआ है। जायसी की चम्पकवर्णी पद्मिनी के अंगों से गंध आती है। कालिदास ने वर्षारम्भ में भूमि से निकलने वाली गंध का वर्णन किया है (मेघदूत, पूर्वमेघ)। कीट्स के गीत 'Ode to the Nightingale' में भी फलों की गंध की रमणीय संवेदना उत्पन्न की गई है। 'प्रसाद' ने शिरीष पुष्पों की गंध (जब शिरीष के सुमन-गंध की मानभरी मधु-ऋतु राते, कामायनी) तथा सोंधी सुवास ('पुरस्कार' नामक कहानी) का वर्णन किया है। पंत जी की गंध-भावना भी प्रशंसनीय है।

अत्यन्त संवेदनाशील व्यक्तियों में गंध के प्रति इतनी सजगता होती है कि वे वर्षों बाद भी किसी पूर्वानुभूत गंध की कल्पना करके विह्वल हो जाते हैं और अपने को उसी वातावरण में पहुँचा हुआ पाते हैं। कभी कभी तो गंध का उन्हें प्रत्यक्ष ही अनुभव होने लगता है। हाँ 'पीनसवारे' तो कपूर को भी सोरा (कलमीसोरा) जान कर

ह स्पर्श मलय मलय के झिलमिल सा संज्ञा को और सुलाता है।
(काम सर्ग)

जलदागम मारुत से कम्पित पल्लव सदृश हथेली ;
श्रद्धा की, धीरे से मनु ने अपने कर में लेली। (कर्म सर्ग)
तृण गुल्मों से रोमाञ्चित नग सुनते उस दुख की गाथा (स्वप्न सर्ग)
सुख स्पर्श कमल केसर का कर आया रज से रजित (आनन्द सर्ग)

प्रकृति-पुरुष के मिलन के पुलक की व्यंजना भी दर्शनीय है—

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित वह चेतन पुरुष पुरातन ;
निज शक्ति तरंगायित था, आनद-अम्बु-निधि शोभन (आनन्द सर्ग)

प्रभात की एक स्वर्ण किरण का स्पर्श कवि पंत के हृदय को मधुर अनुभूति दान कर जाता है—

खो गई स्वर्ग की स्वर्ण-किरण छू जग-जीवन का अन्धकार,
मानस के सूने से तम को दिशि-पल के स्वप्नों से सँवार। (युगान्त)

महादेवी जी को स्वर्गीय किरण के स्पर्श की कितनी प्राणमयी, लोकोत्तर व दिव्य अनुभूति हुई है —

चुभते ही तेरा अरुण बाण।
बहते कन कन से फूट फूट मधु के निर्झर से सजल गान। —रश्मि

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये उक्तियाँ मानव-निरपेक्ष स्वतन्त्र प्रकृति-प्रेम के ही भाव स्फोट हैं।

(ज) भाव-व्यंजना

प्राकृतिक विभावों के रूप-चित्रण की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व कौशलपूर्ण विवृति में ही कवि की पूरी मनस्तुष्टि नहीं हो सकती। वह इससे आगे बढ़ कर अपने आनन्द-उल्लास की प्राणमयी भावना को भी व्यक्त करता है। जब स्वर्गिक प्रेरणा के किसी क्षण में कवि समस्त प्रकृति-प्रसार पर व्यापक दृष्टि डालता है तो वह इस मधुमयी भावना से स्फुरित-तरंगित हो जाता है कि यह आनन्दोल्लासमयी प्रकृति अनादि ब्रह्म की मधुमयी सृजनात्मक काम प्रेरणा की रसात्मक या आनन्दपूर्ण

काश्मीर की नयनाभिराम शोभा को देख कर पं० श्रीधर पाठक प्रकृति-प्रेम से तरलित हो कर 'धन्य ! धन्य !!' कर उठते हैं—

धन्य यहां की धूलि धन्य नीरद, नभ, तारे,
धन्य धवल हिमशृंग, तुंग, दुर्गम, दृग-प्यारे,
धन्य नदी नद-स्रोत, विमल गंगोद-गोत जल
सीतल सुखद समीर, वितस्ता-तीर स्वच्छ-थल।

(काश्मीर सुखमा)

गुप्त जी का उल्लास देखिए—

क्या ही स्वच्छ चांदनी है यह, है क्या ही निस्तब्ध निशा ;
है स्वच्छन्द-सुमन्द गन्ध वह, निरानन्द है कौन दिशा ?

पं० रामनरेश त्रिपाठी का सात्विक प्रकृति-प्रेम जन्य उल्लास परम मोहक है—

देखो प्रिये ! विशाल विश्व को आंख उठा कर देखो।
अनुभव करो हृदय से यह अनुपम सुषमाकर देखो॥
यह सामने अथाह प्रेम का सागर लहराता है।
कूद पड़ूं, तैरूं इसमें, ऐसा जी में आता है॥ —'पथिक'

पं० उदयशंकर भट्ट की 'मानसी' में अनेक स्थलों पर अत्यन्त सुन्दर भावोत्कर्ष दिखाई पड़ता है। 'कुसुम' नामक कविता में कुसुम की ओर से मानो कवि ही कहता है—

मैं सम्पूर्ण विश्व का सुख हूं यौवन का उल्लास है सगी,
और समुच्चय प्रकृति चेतना का छोटा सा हास है सखी।
महान्य सौन्दर्य विश्व के कण से विकसित रूप हमारा,
मैं हूं मृदु प्रेरणा जगत की जिसमें विकासित अन्तर सारा।

'राका-रोमाञ्चित विभावरी' कवि को कितनी मार्मिक अनुभूति प्रदान कर जाती है, यह देखिए—

ज्योत्स्ना-भीनी तन पृथ्वी का कवि का मन अनुराग रंगा सा।
नदनों में प्रिय छवि की आभा, चांद गगन में मुसकाता सा।
एक साथ साकार हो उठे मानो जीवन के सब सपने।

शीतल लेप लगाती है, आश्वासन देती है, आंचल में लेकर सुलाती है, उसके धूल भरे दुखते अंग सहलाती है।

> आज मैं सब भाँति सब सम्पन्न हूँ, वेदना के इस मनोरम विपिन में,
> विजन-छाया में दृगों की, मोद की विचरती है आज मेरी चेतना।
>
> पंत (ग्रन्थि)

सन्ध्या के पश्चात् अंधकार में चन्द्रोदय को देख कर कोई ऐसी कल्पना करे तो कर सकता है -

> उधर भास्कर हो गया तिरोहित, इधर प्रकट हो रहा चन्द्रमा,
> ज्यों जग-शिशु को पिला एक स्तन, खोल रही दूसरा प्रकृति मा।
> धवल चांदनी का कोमलतम, अपना आंचल उज्ज्वल रुपहला—
> सुला रही फिर पीड़ित जग को स्नेहमयी रजनी हिमांचला।

(ञ) मनस्थिति

रूप, रंग, गंध व ध्वनियों के चित्रण के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा हम कवि के अनन्त प्रकृति-प्रेम की गहराई की थाह पा सकते हैं। जिस व्यक्ति के साथ हमारा तादात्म्य स्थापित हो जाता है उसकी एक-एक गति-विधि, मुद्रा, मनस्थिति (Mood) आदि को हम ध्यान से निहारा करते हैं। चिर-साहचर्य के परिणामस्वरूप कवि प्रकृति में कभी मा की, कभी प्रिया की, और कभी सहचरी की भावना करता है और उसकी मुद्राओं में कुछ विशिष्ट भावों को अभिव्यक्त हुआ देखता है। वह मधुमयी चांदनी में प्रकृति की स्नेह-धारा प्रवाहित होती हुई पाता है। वर्षागम के मेघों में स्निग्ध करुणा, जेठ की धूप में रोष, शिशिर की कुहरिल सांझों में उदासी, वसन्त-प्रभात में उन्माद, सांझ की पीली-पीली धूप में अवसाद व निराशा, एकान्त निभृत सरिता-तटों की नीरवता में विश्राम, लहरों की मचलन में प्रणयाभिलाष आदि का अनुभव करता है। प्रकृति के मुख पर समय-समय पर इस प्रकार की परिवर्तित होती हुई भाव-भंगिमाओं में वस्तुतः हम अपने ही भावों का आरोप करते हैं, अपने

शृंगार रस के उद्दीपन पक्ष में ही किये जाने की बँधी-बँधाई साहित्यिक परम्परा है। है भी यह बहुत स्वाभाविक। यह तथ्य मनोविज्ञान-सम्मत है कि हम अपनी अभीष्ट वस्तु या प्रिय की प्राप्ति में असीम आनन्द का अनुभव करते हैं और उसके विछोह या नाश से उसी अनुपात में दुःख का। यह सुख दुःख की अनुभूति अन्य मानव-सम्बन्धों की अपेक्षा प्रणय-सम्बन्धों में ही ('प्रियप्रवास' में वात्सल्य-रस-वर्णन में भी इसकी बड़ी विशद व वेगवती व्यंजना हुई है।) ऐसा वेग व तीव्रता धारण करती है क्योंकि आलम्बन से शारीरिक, मानसिक व आत्मिक तीनों रूपों में सम्बद्ध होने के कारण (अन्य सम्बन्धों में ये रूप एक साथ नहीं मिलते) आश्रय का सम्पूर्ण अस्तित्व प्रभावित होता है। यह अनुभूति हमारे हृदय तक ही सीमित न रह कर हमसे फूट-फैल कर समस्त चराचर जगत् या प्रकृति तक परिव्याप्त हो जाती है। उन्हीं क्षणों में हम सौन्दर्य का सर्वाधिक अनुभव करते हैं।[1]

हाँ तो मानव-प्रसंग में (स्वतन्त्र नहीं) प्रणयी हृदयों के विरह-मिलन के अनुभवों या स्थितियों में प्रकृति जितने भी रूपों में निरूपित की जाती है उन सब में उसका उद्दीपन-गत रूप का चित्रण ही हमें प्राप्त होता है। मिलन के क्षणों में शान्त एकान्त स्थान, चाँदनी, समीर, चन्द्रमा व मधुर गन्ध हमें सुख पहुँचाते हैं और विरह में ये ही पदार्थ

---

[1] 'The Psychology of Beauty' (article in 'Golden Jubilee Number' of The Banaras Hindu University Journal, 1942) by Dr B L Atreya.

"So the esthetic emotion (part of that "Tender emotion" which accompanies the instinct of love) may overflow from the person desired to the objects attached to her, to her attitudes and forms, to her manners of action and speech, and to anything that is hers by possession or resemblance. All the world comes to partake of the fair one's splendour."—Will Durant, The Mansions of Philosophy (1929), page 290

ग्राहक व दुःखदायी सिद्ध होती है। यद्यपि यह तथ्य प्रायः सभी मानव-जीवन-यात्रियों (पशु-पक्षियों के लिए भी विज्ञानवेत्ताओं ने सही ठहराया है) पर समान रूप से लागू होता है किन्तु उद्दीपन का क्षेत्र इस सामान्य मानव प्रवृत्ति से कुछ ऊपर भी है जो साहित्य में या जीवन की विशिष्ट अवस्थाओं में मिलता है। हाँ, सामान्य या औसत मानव-हृदय के लिए तो यह ठीक ही ठहरता है। यदि हम उद्दीपन का क्षेत्र यहीं तक मान लें तो मानव-चरित्र की कतिपय उदात्त वृत्तियों के प्रदर्शन का कहीं स्थान ही नहीं रह जाता और आश्रय-आलम्बन सामान्य पाशविक वृत्तियों से परिचालित कामीजनों से अधिक नहीं दिखाई पड़ सकते। एक विशेष बात यह है कि मिलन में चाहे किसी विशिष्ट उदात्त वृत्ति का पता न चले किन्तु विरह की दशा में उदात्त वृत्ति के पात्रों में (चाहे जीवन-व्यापार के अन्तिम अंचलों में ही नहीं) कुछ ऐसी सात्विक कांति फूटती है कि उनकी सात्विकता व साधुता साहित्य व जीवन के गौरव की वस्तु सिद्ध होती है।

उद्दीपनगत रूप में प्रकृति जड़ रूप में भी चित्रित होती है और चेतन रूप में भी। जड़ रूप प्रायः वहां मिलता है जहां कवि, आश्रय या कोई पात्र प्रकृति के पदार्थों से या तो मिलन-सुख का संवर्द्धन मात्र करता है (क्योंकि दृष्टि प्रिय पर ही टिकी रहती है, प्रकृति के साथ कोई तादात्म्य सम्बन्ध नहीं होता) या विरह में रुदन और हाहाकार करता है किन्तु प्रकृति की ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता। जो कवि प्रकृति में चेतना का आरोप करते हैं वे अपने दृष्टिकोण के आग्रह से प्रकृति व पात्र के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर की भी व्यवस्था कर देते हैं। अन्यथा प्रकृति मूक या जड़ ही दिखाई पड़ती है। डा० गुलाबराय जी भी यही मानते हैं कि उद्दीपन में प्रकृति जड़ भी रह सकती है और चेतन भी। (दे० उनका 'काव्य में प्रकृति चित्रण' नामक लेख)।

छायावाद में प्रकृति का चेतन रूप ही अधिक ग्रहण किया गया है।

प्रकृति के प्रति विरही हृदय की यह दशा कितनी उदार व उन्नत है—

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके ! चूमो तरंगो के अधर,
उडुगणो ! गाओ, पवन-वीणा बजा !
पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ किसी निर्जन-विपिन में बैठ कर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न-भावी को डुबा दे आप-सी !

—पंत (ग्रंथि)

(ग) प्रकृति को सुखी देखकर मानव भी आत्म-बल से अपने सुख का विधान करता है। वर्ड्सवर्थ के प्रसिद्ध 'Immortality ode' मे यह भावना बहुत ही सुन्दरता से व्यक्त हुई है। कवि अपनी प्राचीन अन्तर्दृष्टि (Vision) के मन्द पड़ जाने पर खिन्न है। प्रकृति तो अभी भी वैसी ही आनन्दपूर्ण है किन्तु उसका मन अब वैसा नहीं। पर वह प्रकृति के आनन्दोल्लास मे अपने अवसाद की धारा मिला कर रंग में भंग नही करना चाहता। इसलिए वह उसके उल्लास निर्विघ्न व यथा-पूर्व चलने देना चाहता है और स्वय भी मानसिक बल से उसमे सम्मि-लित होने का प्रयत्न करता है।

मिल्टन की 'Lycidas' नामक कविता के अन्त मे भी आशावाद का सुन्दर सकेत है।

केशव का 'कलहस, कलानिधि, खजन, कज ··' वाला सवैया प्रसिद्ध ही है।

(घ) तीसरे वर्ग मे मानव व प्रकृति दोनो के सुख या प्रसन्नता की भावना व्यक्त करने वाली उक्तियां रखी जा सकती है। मानव सुख का

उल्लास मे कुछ व्यावहारिक अन्तर है। एक में उल्लास का मूल स्रोत मानव ही है, प्रकृति उस उल्लास मे सहायिका मात्र है, जब कि दूसरे में उल्लास का मूल स्रोत स्वयं प्रकृति है। कवि या पात्र अपनी आत्मा या विश्वात्मा के आभास की अनुभूति से ही प्रकृति में महान् आनन्द का अनुभव करता है। 'साकेत' की सीता की आत्मा यदि प्रकृति के साथ एकाकार न हो तो प्रिय-संग-जन्य सन्तोष मात्र से ही कदाचित् उस कोटि के आनन्द की भावना जागृत ही न हो। आलम्बनगत चित्रणों का आनन्द प्रत्यक्ष ही कहा जायगा, जब कि उद्दीपनगत वर्णनों का परोक्ष। एक मे प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है जो किसी पर आश्रित नही, दूसरे मे मानव पर आश्रित है। मानव-सम्बन्ध मे किसी प्रकार की विकृति उत्पन्न होते ही, उस आनन्द का स्वरूप परिवर्तित हो जायगा। अपने चरम विकास की दशा मे ये दोनों आनन्द, एक ही आत्मा के दो स्रोत होने के नाते, मूलतः एक ही है पर वैज्ञानिक स्पष्टता के लिए यदि उनका पृथक्करण किया ही जाय तो इस प्रकार किया जा सकता है।

(४) चौथे वर्ग मे वे उक्तियां रखी जा सकती है जिनमे मानव को तो सुखी दर्शाया जाय और प्रकृति को दुखी। मानव के शोक मे सहानुभूति मे प्रकृति का सन्तप्त होना तो पहले वर्ग मे दिखाया जा चुका है। किन्तु इसके विपरीत ऐसी भावना भी हो सकती है जिसमे मानव के सुख-सौभाग्य पर प्रकृति ईर्ष्यावश दुख मनाती हो! पर इस प्रकार की उक्तियां देखने मे प्रायः नही आती। प्रकृति मानव से किस बात पर ईर्ष्या करे! मानव तो प्रकृति का बालक ही है। आदर्शवादी दार्शनिकों ने प्रकृति को सर्वाधिक ईश्वरीय आलोक से सम्पन्न ठहराया है। प्लेटो ने भी प्रकृति मे ईश्वरत्ता का दर्शन किया है।[*] यूनानी दार्शनिक प्लोटिनस ने बुद्धि का विषयात्मक प्रज्ञा (Objective

---

[*] 'Symposium' (1951, The Penguin Classics) p. 93-94.

Reason) को ग्रदि तत्त्व कहेगा। यह जीवात्मा में सब से अधिक प्रकाशित होती है और उससे कम प्रकृति में।* विन्टर-कूप्स ने भी यही आदर्शवादी दृष्टिकोण ग्रहण किया है।** इस कारण मानव के प्रति प्रकृति के ऐसे व्यवहार को मानो बहुत ही कम प्रश्रय दिया गया है। हां, अलबत्त ऐसी उक्तियां तो मिलती ही हैं जिनमें किसी के प्रिय व्यक्ति के हरण पर भाग्य को यह कह कर कोसा गया हो कि वह प्रेमियों के इस सुख को न देख सका! पर वे प्रकृति से सम्बन्ध न रख कर नियति या अन्य शक्तियों से ही सम्बन्ध रखती हैं।

विस्तार-भय से हम इस प्रकरण को अब यहीं समाप्त करते हैं। इस विवेचन से उद्दीपन के क्षेत्र-विस्तार का पाठकों को कुछ अनुमान हो गया होगा। वस्तुतः इस दिशा में सुस्पष्ट शास्त्रीय विवेचना की बहुत आवश्यकता है। लक्षण ग्रन्थों में तो उद्दीपन प्रकरण में प्रायः मात्र प्रकृति द्वारा विरह-मिलन के अनुसार दुःख या सुख की अनुभूति बढ़ता हुआ ही बता कर छोड़ दिया जाता है, पर अभी नवीन ढंग से उद्दीपन के क्षेत्र की बारीक छान-बीन की आवश्यकता बनी हुई है। यह विवेचन तो एक दिशा-निर्देश का प्रयत्न मात्र है।

(३) रहस्य-भावना

उपजीव्य ही हो जाती है। किन्तु बात बात मे 'कहाँ ?' 'कौन ?' की प्रवृति बाल-वृत्ति सी भी जान पडने लगती है। अतः किसी विशेष गम्भीर प्रसंग मे ही बिजली की कौंध की तरह इसकी अभिव्यक्ति हृदय को चमत्कृत करती है। स्वाभाविक रहस्य-भावना उसी कवि मे मिलेगी जिसने प्रकृति को उसके सभी रूपो, उसकी सभी विचित्रताओं व सभी मनोदशाओ (Moods) मे दत्तचित्त होकर देखा है और उसकी सौन्दर्य-सुरा का आकठ पान किया है। जिसने प्रकृति के शान्त, सौम्य, मधुर, तथा उदात्त (Sublime) व भीषण सभी रूपो का रोमाच व पुलक के साथ अनुभव न किया उसकी जिज्ञासा या रहस्य-भावना मे स्वाभाविकता व सप्राणता नही आ पाती। प्रकृति की मधुर गोद मे पलने वाले तत्वदर्शी आर्य-ऋषियो की यह जिज्ञासा कितनी सच्ची व स्वाभाविक है—

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे। कतरः स आत्मा, येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा गन्धाना जिघ्नति येन वा वाच व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति।

—ऐतरेयोपनिषद् ३।१।१

अर्थात जिसकी हम उपासना करते है वह आत्मा कौन है ? जिसके सहयोग से मनुष्य देखता है, सुनता है, सूँघता है, बोलता है, स्वाद-अस्वाद का भेद करता है वह आत्मा कौन है ?

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१

अर्थात् जगत का मूल कारण वह ब्रह्म कौन है, हम किससे उत्पन्न हुए है, हमारे जीवन का परम आधार कौन है ? जिसकी बनाई हुई व्यवस्था मे हम सब सुख-दुःख भोग रहे है, वह व्यवस्थापक कौन है ?

इस जिज्ञासा-भाव से युक्त मर्मभेदिनी दृष्टि लिये जो भावुक साधारण से साधारण फूल को भी देखता है उसे भावोद्वेल के कारण

अश्रुपात होने लगता है—

> "To me the meanest flower that blows can give
> Thoughts that do often lie too deep for tears".
>
> —Wordsworth (Immortality Ode)

कविवर पंत की हिमाद्रि (स्वर्णकिरण), सृष्टि (युगान्त), मौन-निमंत्रण (पल्लव), 'एक तारा' तथा 'आज शिशु के कवि को अनजान' (गुंजन) आदि कविताओं में मूक आश्चर्य, जिज्ञासा, व कुतूहल की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

'कामायनी' में मनु की यह जिज्ञासा उपरोक्त उपनिषद्-वाक्यों की

को हृदयगम कराने के लिए ही होते है अत: उनका महत्व गौण है। फिर भी इतना निर्विवाद है कि उनके अभाव मे कवि का प्रस्तुत, वर्ण्य अथवा दृश्य शून्य मे खडा हुआ सा जान पडता है। उनके सयोग से दृश्य म एक भरापूरापन का सा अनुभव होता है।

पृष्ठभूमि व वातावरण चित्रणो मे सब से बडा साम्य यही जान पडता है कि दोनो मुख्यत: प्रबन्ध काव्यों मे मानव-प्रसंगो मे व्यवहृत होते है और न्यूनाधिक रूप से सौन्दर्य-वर्धन व काव्य की प्रभावशालिता म सहायक होते है। किन्तु वैषम्य कई बातो मे है। मुख्य विषय से पृष्ठभूमि का सम्बन्ध कुछ दूर का, गौण, परोक्ष व निष्क्रिय दिखाई पडता है जब कि वातावरण का सम्बन्ध निकटतम, मुख्य व प्रत्यक्ष होता है। पृष्ठभूमि का सम्बन्ध मुख्य विषय से कुछ कुछ वैसा ही जान पडता है जै । फ्रेम का फोटो से या दूर दूर मेखलाकार फैली पहाडियो का किसी नगर से। फोटो व नगर का अस्तित्व उनके अभाव मे भी सुरक्षित है । हाँ, यह दूसरी बात है कि दूर या गौण रह कर भी वे सौन्दर्य-साधन मे सहायक हो रहे है। वे चित्र या नगर के अभिन्न अग नही। किन्तु वातावरण का प्रभाव अनिवार्यत: पड कर ही रहता है। वह विषय का एक सक्रिय तत्त्व है। हमारा श्वासोच्छ्वास अपने वातावरण पर भी निर्भर है । मनोवृत्तियो का निर्माण व निर्धारण भी बहुत कुछ उस पर आश्रित रहता है। इस दृष्टि से वातावरण रूप म प्रकृति चित्रण का काव्य-वस्तु से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ व दृढ सम्बन्ध है। वातावरण का प्रभाव मानव पर पडता है, मानव का वातावरण पर नही। पृष्ठभूमि का तो सकेत मात्र कर देना ही अभीष्ट होता है जब कि वातावरण का कुछ विस्तृत वर्णन आवश्यक होता है। 'कामायनी' के प्रथम सर्ग म प्रलय की भीषणता व द्वितीय सर्ग मे हिमालय प्रदेश के उत्फुल्लकारी प्रभात की शोभा का प्रभाव सीधे मनु पर पड़ता है। इतना ही नही, मनु के जीवन की गति-विधि

शाखा डोली तरु निचय की कंज फूले सरों में।
धीरे धीरे दिनकर बढ़े तामसी रात बीती॥
फूली फैली लसित लतिका वायु में मंद डोली।
प्यारी प्यारी ललित-लहरें भानुजा में विराजीं।
सोने की सी कलित किरणें मेदिनी ओर छूटीं।
कूलों कुंजों कुसुमित वनों में जगी ज्योति फैली॥

—प्रियप्रवास, ५-१, २

यह वर्णन आलम्बन रूप में नहीं कहा जा सकता क्योंकि श्रीकृष्ण प्रवास के दुःखद क्षण सावकाश हो कर कवि का प्रकृति के चित्रण में लीन होना अस्वाभाविक व असंगत है। वातावरण रूप में भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस उत्फुल्लकारी प्रभात काल का व्रज-जनता पर कोई अनुकूल व मधुर प्रभाव अंकित करना न तो कवि को इष्ट ही है और न प्रसंग-प्राप्त ही। प्रकृति आनन्द में है किन्तु मानव-जीवन का क्षेत्र कितना शोकाकुल है, यही विरोध (Contrast) के द्वारा दिखाया गया है। अतः हमारी समझ में ऐसे स्थल पृष्ठभूमि-चित्रण के ही कहे जायेंगे।

एक और उदाहरण 'साकेत' में लीजिए। चित्रकूट में रात भर अयोध्या के राज-परिवार व ऋषि-मुनियों का समाज जुटा है। कैकेयी का परितोष हो गया है और क्षुब्ध वातावरण में पुनः सौमनस्य स्थापित हो गया है। इस वातावरण में प्रकृति भी स्वस्थ व प्रसन्न दिखाई गई है—

मूँदे अनंत ने नयन धार वह झाँकी,
शशि खिसक गया निश्चिन्त हँसी हँस बाँकी।
द्विज चहक उठे, हो गया नया उजियाला,
हाटक पट पहने दीख पड़ी गिरिमाला।

—साकेत, अष्टम सर्ग

यहाँ मानव व प्रकृति की मनस्थिति में साम्य अंकित किया गया है। या यों कहिये कि मानव का प्रभाव प्रकृति पर पड़ा दिखाया गया है।

पृष्ठभूमि की झलक के द्वारा प्रस्तुत गंभीर मानसिक वातावरण की पूर्ण स्वच्छता व उत्फुल्लता व्यंजित होती है जो जितनी इस युक्ति से सहजता से हो सकी है उतनी कवि के अपनी ओर के कथन के द्वारा नहीं हो पाती।

हम दैनिक व्यवहार में भी कभी-कभी अपनी बात को प्रभावशालिता के लिए विशेष आयोजन व उपक्रम के साथ सजा-संवार कर कहते हैं और इस के लिए उचित पृष्ठभूमि या वातावरण भी तैयार करते हैं। अपने भावों को या वर्णनों को प्रभावशाली रूप से अंकित करने के लिए उपरोक्त विधाओं का प्रयोग भी उसी स्वाभाविक मनोवृत्ति का प्रतिफलन है। आयोजन, परिवेष्टन या सजावट भी जीवन के लिए कितनी व्यावहारिक वस्तुएँ हैं, यह सब का अनुभव है।

(६) अलंकार

काव्य में अलंकार-रूप में प्रकृति का पुष्कल प्रयोग होता है। प्रबन्ध काव्यों में मानव-सौन्दर्य वर्णन व मुक्तक गीतों या कविताओं में सूक्ष्म भावों के मूर्त प्रत्यक्षीकरण के लिए प्रकृति के पदार्थ उपमानों के लिए अलंकार रूप में गृहीत होते हैं। कभी कभी प्रकृति अलंकार न रह कर स्वयं ही अलंकार्य भी हो जाती है; अर्थात् प्रकृति के पदार्थों के वर्णन के लिए प्रकृति में से ही उपमान लिए जाते हैं। जैसे—

प्रथम दो पंक्तियों में आई उपमा में उपमेय सरसों की हरियाली के लिए उपमान पन्ना मणि प्रकृति के क्षेत्र से ही चुनी हुई वस्तु है। इसी प्रकार अंतिम पंक्तियों में की गई उत्प्रेक्षा में पीत कुसुम (उपमेय) व तारे (उपमान) दोनों प्रकृति के क्षेत्र के पदार्थ है। इस में यह बात निहित है कि कवि मानव प्रकृति के क्षेत्र से बढ़ कर सुन्दरता का कोई और क्षेत्र देख ही नही पाता; मानव-जगत् में मानो उपयुक्त उपमान मिल ही नहीं सकते। किन्तु आलंकारिक मानते थोड़े ही हैं। उन्होंने 'प्रतीप' और 'व्यतिरेक' अलंकारों की रचना करके मानव-सौन्दर्य का बढ़ा-चढ़ा वर्णन करने के लिए प्रकृति को घटा ही तो दिया! स्वयं तुलसी ने सीता के मुख के आगे कमल को कंटकित कह कर खारिज कर दिया है। अस्तु।

कवि को प्रकृति से असीम प्रेम हो या केशव की तरह वह 'अनदेखेई' अच्छी लगती हो, अलकार-विधान के लिए प्रकृति की शरण लेने के सिवा और कोई चारा नही। जो मानव-जगत् की चारदीवारी मे ही वन्द रहते है, उन की भी बड़ी लाचारी है। कवि खानापूरी के लिए प्रकृति की ओर झाक रहा है या पुष्ट अलकार-विधान की प्रेरणा प्रकृति के विशाल स्वच्छन्द क्षेत्र से प्राप्त कर रहा है, इसकी पहचान बहुत कठिन नही है, वर्णन-प्रणाली मे ही यह साफ झलक जाता है। हा यह माना कि अलकार-विधान मे प्रकृति के प्रति वैसा छल-छलाता प्रेम पूर्ण रूप मे व्यक्त नही हो सकता जैसा आलम्बन रूप में किये गये प्रकृति वर्णन मे, किन्तु फिर भी कवि का अनुराग-जन्य सूक्ष्म निरीक्षण पर्याप्त रूप मे सूचित हो जाता है। वस्तुतः इस क्षेत्र में भी कवि को अपना प्रेम प्रदर्शित करने का पर्याप्त अवसर मिलता है। यदि कोई कवि चिर-परिचित गढ़े-गढ़ाये उपमानो का बटखरो की तरह ही प्रयोग करने मे सन्तुष्ट दिखाई पड़ता है तो काव्य नीरस ही रहेगा किन्तु यदि निजी निरीक्षण के बल पर नये नये उपमानो का

विधान करेगा तो लोक-हृदय उसे श्रेय देगा। यहां एक बात बड़ी कठिनाई की पैदा होती है। चांद, कमल, भ्रमर आदि उपमान कितने ही पुराने हों पर इनका स्थान काव्य में सदा सुरक्षित रहेगा। इसमें कोई आपत्ति भी नहीं। मुख्य कठिनाई यह है कि वास्तविक कवि तो चन्द्रमा से उपमा देते समय चन्द्रमा की भावना में पूरी तरह डूब कर ऐसा करेगा किन्तु अधिकांश कवि या छन्दकार परम्परागत प्रयोग की परिपाटी से लाभ उठा कर यों ही उसका प्रयोग कर देंगे। परिणाम यह होता है कि पाठक भी इस बहु-प्रचलित उपमान की भावना में पूरी तरह रमने का धैर्य नहीं रखेंगे। परम्परागत उपमानों के प्रयोग में बस यही एक अड़चन की बात है। यों चन्द्रमा को उपमान रूप में ग्रहण करने में प्रारम्भिक कवि को जितना उल्लास मिला था उतना ही उल्लास आज भी कवि या पाठक को मिल सकता है, मिलता भी है।

हर्ष की बात है कि आधुनिक हिन्दी-कविता में कवियों ने अपनी प्रतिभा, सूक्ष्म कल्पना व निरीक्षण-शक्ति के बल पर, उपमानों के क्षेत्र को पर्याप्त विस्तृत किया है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के प्रयोग से उनकी व्यापक प्रकृति-दृष्टि का पता चलता है। उपमा के कुछ उदाहरण लीजिए—

मेमनों से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर।

—'पंत' (पल्लव)

प्रेयसि की मुख-छवि मेघ मुक्त
शशि रेखा सी उगती मन में!

× × ×

ज्योत्स्ना में झंझा से कंपित
हल्की फुहार-सी पड़ती भर।

—पंत (उत्तरा)

निर्झर सा झिरझिर करता माधवी-कुंज छाया में
चेतना वही जाती थी हो मंत्र-मुग्ध माया में!

—'प्रसाद' (आँसू)

मृत्यु, अरी चिर निद्रे! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल,
तू अनंत में लहर बनाती काल-जलधि की सी हलचल!

—प्रसाद (कामायनी)

वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की विधवा है!

—'निराला' (परिमल)

मैं विकल: जैसे कमल-दल पर निशीथ तुषार,
मैं अशान्त: विभावरी में ज्यों जलधि व्यापार,
मैं सकाम: प्रभात में ज्यों स्वप्न का शृंगार,
मैं उदास निराश: ज्यों सन्ध्या समय कान्तार।

—'शेष' (मुवेना)

रेखांकित स्थलों में कवियों का अच्छा प्रकृति-निरीक्षण मिलता है। उपमेय पक्ष तो कहीं कहीं संक्षिप्त ही है। उपमान पक्ष का विस्तार प्रकृति के एक पूरे व्यापार के प्रयोग की ललक व्यक्त करता है।

विभूतियों का भी नाम रूपक में ऐसा सामंजस्य हुआ है। [illegible] के सौन्दर्य के वर्णन में कवि ने श्रृंगार का भरा पूरा वर्णन कर दिया है।

उत्प्रेक्षा का भी एक उदाहरण लीजिए—

> [illegible]
> [illegible]
>
> —'प्रसाद' (कामायनी)

सन्देह अलंकार (उत्प्रेक्षा भी मानी जा सकती है) के इस प्रयोग में प्रकृति के एक सुन्दर रूप की झांकी देखिए—

> [illegible]
> [illegible]
>
> —'प्रसाद' (कामायनी)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुत-विधान में कवियों ने पिसी-पिटी परम्पराओं से हट कर मुक्त कल्पना का परिचय दिया है।

(७) प्रतीक

विशेष धर्म या गुण के प्रकाशक प्रकृति के कुछ पदार्थ, जो सामान्यतः सबके हृदय में एक सी भावना जगाते हैं, कविता में 'प्रतीक' कहलाते हैं।* प्रतीक भारत का बहुत प्राचीन शब्द है।+ निर्गुण निराकार ब्रह्म की सूक्ष्म भावना को हृदयगम कराने के लिए जिन गोचर अथवा मूर्त्त रूपों का सहारा लिया जाता है वे 'प्रतीक' कहलाते हैं। स्वामी विवेकानंद ने प्रतीक का अर्थ किया है—'वे वस्तुएँ जो

---

*"The term given to a visible object representing to the mind the semblance of something which is not shown but realized with it. Ship, a symbol represented the Church, in which the faithful are carried over the sea of life. Peacock stands for immortality, the phoenix for the resurrection; the dragon or the Serpent for Satan".

—Encyclopaedia Brittanica (1947), page 700.

+ 'स य नाम ब्रह्मेत्युपास्ते' इत्येवमादिषु प्रतीकोपासनेषु संशयः।' —ब्रह्मसूत्र।

किसी न किसी अंश तक ब्रह्म के स्थान में उपास्य कही जा सकती है।'*
श्री रामानुजाचार्य का कथन है—'जो वस्तु ब्रह्म नहीं है उसे ब्रह्म मान कर उसमें भक्तिपूर्वक मन को लगा देना।' अभिप्राय यह कि प्रतीक सूक्ष्म के स्थान पर प्रयुक्त स्थूल पदार्थ होते हैं। यही 'प्रतीक' शब्द की व्यापक भावना है। ईसाई मत में भी प्रतीकों का प्रभावशाली प्रयोग होता था। उपासना क्षेत्र का यह शब्द साहित्य क्षेत्र में भी स्थूल के द्वारा सूक्ष्म की भावना कराने के प्रसंग में प्रयुक्त किया जाने लगा। सन् १८८५ में फ्रांस में प्रतीकों के माध्यम से ही अपनी बात कहने वाला एक कवि-सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ।×

यों तो प्रकृति के सभी पदार्थ किसी न किसी धर्म या गुण के प्रतीक कहलाये जा सकते हैं किन्तु लोक-हृदय ने बिना किसी शास्त्रीय विधान के कुछ विशिष्ट पदार्थों में सबसे अधिक प्रतीकत्व स्थापित कर लिया है। यह प्रतीकत्व एक प्रकार से उनका विशेषाधिकार हो गया है। कमल, चन्द्रमा, मीन, मेघ, पुष्प, कोकिल, उषा, लहर, चकवा-चकवी आदि ऐसे ही कुछ प्रतीक हैं जो इनके विशिष्ट गुणों से सम्बद्ध या समानान्तर सूक्ष्म भावना की अभिव्यक्ति के लिए उनके स्थान पर काम में लाये जाते हैं। युग-युगान्तरों के निरन्तर प्रयोग से इन पदार्थों में हमारे हृदय में उन्हीं भावनाओं को जगाने की गहरी शक्ति संचित हो गई है। प्रतीक रूप में यदि 'उषा' शब्द का व्यवहार होता है तो उसका अर्थ सूर्योदय के पूर्व की ललाई न होकर उल्लास व उत्फुल्लता ही होगा जो उषा का [illegible] गुण है। यथा—

[illegible]

—पंत

प्रतीक रूप में प्रयुक्त 'लहर' शब्द केवल जल के विकार का ही

---

* [illegible] (श्री [illegible] के 'अभिनन्दन' से उद्धृत)

× Symbolism—Encyclopaedia Britannica (1947) page 721.

प्रकृति का इस रूप में उपयोग मिलता है। हिन्दी के रीतिकालीन नीति-वादी कवि गिरधर, रहीम आदि—इस दिशा में पर्याप्त लिख गये हैं। वर्त्तमान काल मे भी यह प्रवृत्ति कही कही दिखाई पड़ती है। दो तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

> एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
> राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।
> बहुत तारे थे, अँधेरा कब मिटा,
> सूर्य का आना सुना जब, तब मिटा।
>
> —'साकेत', प्रथम सर्ग

यहाँ सूर्योदय होने पर अँधेरा मिट जाने के प्राकृतिक व्यापार के द्वारा एक सामाजिक तथ्य का निरूपण है।

> कहती है यह प्रकृति सदा तुम प्रेम करो केवल अपने पर।
>
> × × ×
>
> सेवा है महिमा मनुष्य की, न कि अति उच्च विचार द्रव्य बल।
> मूल हेतु रवि के गौरव का, है प्रकाश ही न कि उच्च स्थल॥
>
> —'स्वप्न', पृष्ठ ३६

ऊपर के उदाहरण मे प्रकृति के द्वारा उपदेश स्पष्ट है। रवि के गौरव का हेतु प्रकाश ही है, उच्चता नहीं; इस बात के द्वारा मनुष्य की महिमा सेवा मे ही होने का तथ्य व्यंजित हुआ है।

'दो मित्र' नामक कविता (युगवाणी) में पंतजी ने प्रगाढ़ मित्रता के निर्वाह की सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न करते हुए चिलबिल के पेड़ों का सुन्दर चित्र अंकित किया है—

> उस निर्जन टीले पर
> दोनों चिलबिल
> एक दूसरे से मिल,
> मित्रों से हैं खड़े,
> मौन, मनोहर।

सभ्यता के मार्मिक स्वरूपों का भी उद्घाटन करते हैं। उसका कुछ विस्तृत विवेचन द्वितीय प्रकरण में हो ही चुका है।

मध्यकाल में तुलसी प्रकृति के द्वारा नैतिक तथ्यों की व्यंजना करने के लिए प्रसिद्ध ही हैं। यथा—

> बुंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥
> छुद्र नदी जल भरी तुराई। जिमि थोरे धन खल इतराई॥
> उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै संतोषा॥

आधुनिक मनोवृत्ति वस्तु-व्यापार का चित्रण करके उसे वहीं छोड़ देने की है जिससे कि काव्य की ध्वनि पाठक स्वयं अपनी ग्राहक कल्पना के बल से ग्रहण करे। अपनी ओर से निष्कर्ष आदि निकाल कर रखने के बजाय यदि कवि स्वयं पाठक की कल्पना को सक्रिय हो कर रसानुभव या तथ्य-ग्रहण करने का अवसर दे तो अधिक उत्तम है।

आत्म-प्रतीति करते हैं। पर यह सौन्दर्य बड़ा व्यापक है। उसका एक छोर तो पदार्थों का बाह्य रूपाकार या चाकचिक्य है और दूसरा छोर सूक्ष्म प्रकाश-चेतना व सुमित आदर्शों में निहित है। सौन्दर्य की इसी महत् भावना को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं —

> उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं। ('प्रसाद')
> कितनी सुन्दरता कल्याणि! सकल ऐश्वर्यों की संधान! ('पंत')

यह सौन्दर्य चार प्रकार का है—शारीरिक, वस्तुगत, कलागत और प्राकृतिक। सब प्रकार के सौन्दर्य का मूलस्रोत प्रकृति है जो अव्यक्त ब्रह्म का व्यक्त प्रसार है। इसीलिए प्रकृति के सौन्दर्य में कुछ विशेषताएँ हैं जो उसे अन्य प्रकार के सौन्दर्य से पृथक करती हैं। प्रकृति के सौन्दर्य को सभी देशों के लोग एक साथ ही सुन्दर कहेंगे। इसकी प्रशस्ति विश्वव्यापिनी है।* मानव सौन्दर्य के आदर्शों में भेद हो सकते हैं। प्रकृति में हम अपनी आत्मा की छाया का अनुभव करते हैं। विशालता या उदात्तता (Sublimity), जो ईश्वरीयता की भावना का संकेत करती है, हमें प्रकृति में ही मिलती है। प्रकृति का सौन्दर्य ही पूर्ण निष्काम व आनन्ददायक होता है। प्रकृति-सौन्दर्य के दर्शन से हम अपनी आत्मा को उन्नत, पुष्ट, व प्रोज्ज्वल होते हुए अनुभव करते हैं। प्रकृति का सौन्दर्य प्रयोजनातीत है; उषा, नक्षत्र व विहगों के सौन्दर्य का व्यावहारिक उपयोग न होते हुए भी वे हमें नित्य आकर्षक हैं। प्रकृति हममें आत्म-स्वातन्त्र्य की बलिष्ठ, स्वस्थ व दिव्य भावना भरती है। अंग्रेज कवि शेली ने इसका अनुभव किया है। प्रकृति का सौन्दर्य नित्य नवीन व ताज़ा है। सहस्रों वर्ष पूर्व उषा, किरण, मेघ व इन्द्रधनुष में जो नवीनता थी वह आज भी इनमें

प्रकृति सौन्दर्य की विशेषताएँ

---

* Plato : Symposium (1950 : Penguin Classics Series, Translated by W. Hamilton); page 93-94.

श्रीकृष्ण के भक्त भी अपने आराध्य के गोलोक की कल्पना भी प्रकृति के ही बल पर कर सके। जहाँ श्रीकृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति राधा के साथ विहार करते हैं, वहाँ नित्य यमुना है, नित्य कदम्ब-कानन, वृन्दावन, रास व नित्य गो-गोपियाँ हैं। वेद में ब्रह्म का गौरव-गान प्रकृति के व्याज से ही हुआ है। गीता में भगवान् ने सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, अग्नि, पवन, समुद्र, सुमेरु, हिमालय, पीपलवृक्ष, गंगा (श्रीमद्भगवद्-गीता, ११। २१-३१) आदि सबमें अपना ही अंश व तेज बताया है। वेदान्त में समस्त व्यक्त प्रसार को शबल (चैतन्य प्रकाश से परिपूर्ण) ब्रह्म या सगुण ईश्वर के रूप में बताया है। यों प्रकृति जड़ है किन्तु आत्मा के संयोग से चेतन हो जाती है और उसमें ईश्वर का मधुर अनुभव होता है।

कवि कर्म व काव्य का सर्वोच्च आदर्श

तात्पर्य यह है कि प्रकृति अनन्त सौन्दर्य व अनन्त चैतन्य से परिपूर्ण है। कवि अपने अन्तःकरण व सहृदय समाज के लिए मानसिक सुख की रसानुभूति के रूप में व्यवस्था करता है। अतः उसे इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रकृति की ओर जाना इष्ट है क्योंकि आनन्द के मूल तत्त्व वहीं प्राप्य हैं। वह प्रकृति से कट कर चल ही नहीं सकता। यदि कवि का यह दावा ठीक है कि वह मानव-हृदय के लिए सौख्य व मुक्ति का वरदान लाता है तो उसे अपने काव्य में उन तत्त्वों का अधिकाधिक समावेश करना होगा जिनसे प्रकृति परिपूर्ण है। केवल 'प्रकृति प्रकृति के लिए' का सिद्धान्त भी अधिक नहीं चल सकता। प्रकृति को अन्ततः मानव के लिए ही उपयोगी बनाना है। मुख्य है मानव ही। प्रकृति भी मानव के लिए ही है, उसका अस्तित्व केवल अपने ही लिए नहीं। इसलिए कवि को अपने समाज के सौख्य व आनन्द की व्यवस्था के लिए प्रकृति की ओर जाना होगा और उसमें निमज्जित हो कर उससे आध्यात्मिक

है। पर जब तक पाश्चात्य पण्डितों की धारणाओं का उल्लेख न हो जाए तब तक हमारे निष्कर्षों के निष्कर्ष का महत्व ही क्या! शेली, पाश्चात्य [illegible] शेली कवियों के लिए क्या कहता है —

"They are the institutors of laws, and the founders of Civil Society, and the inventors of the arts of life, and the teachers, who draw into a certain propinquity with the beautiful and the true, that partial apprehension of the agencies of the invisible world which is called religion .."

" ... A poet, as he is the author to others of the highest wisdom, pleasure, virtue and glory, so ought personally to be the happiest, the best and the most illustrious of men

टाल्सटाय की कला या कविता-सम्बन्धी धारणा भी बहुत परिष्कृत है —

'Art is not, as the metaphysicians say, the manifestation of some mysterious Idea of beauty or God, it is not, as the aesthetic physiologists say, a game in which man lets off his excess of stored up energy, it is not the expression of man's emotions by external signs, it is not the production of pleasing objects, and, above all, it is not pleasure, but it is a means of union among men joining them together in the same feelings, and indispensable for the life and progress towards well being of individual and of humanity.'

और मैथ्यू आर्नल्ड की कविता-सम्बन्धी कुछ गंभीर धारणाएं व्यक्त करने के लोभ का संवरण करना भी कठिन है —

'The future of poetry is immense, because in poetry, where it is worthy of its high destinies, our race, as time goes on, will find an ever surer and surer stay."

× 'Defence of Poetry' by P. B. Shelley; quoted from George Saintsbury's Loci Critici (1931), page 399.

+ Tolstoy 'What is Art?' (1950) translated by Aylmer Maude, page 123

........"We should conceive of poetry worthily, and more highly than it has been the custom to conceive of it. We should conceive of it as capable of higher uses, and called to higher destinies, than those which in general men have assigned to it hitherto. More and more mankind will discover that we have to turn to poetry to interpret life for us, to console us, to sustain us. Without poetry, our science will appear incomplete; and most of what now passes with us for religion and philosophy will be replaced by poetry".

"The best poetry will be found to have a power of forming, sustaining, and delighting us, as nothing else can".*

शायद इस आदर्श [illegible] को भी प्रमाणित करने की [illegible]

ऐसे गंभीर उद्देश्य वाले [illegible] का प्रणयन [illegible] वाले [illegible] को मौलिक सृजन-प्रेरणा, आत्मशक्ति, सौन्दर्य-[illegible], [illegible] के [illegible] क्षेत्र से ही लेने होंगे। हमारे आज के जीवन का [illegible] या प्रत्यागमन करने की प्रेरणा भी यहीं से मिलेगी।

बाह्य प्रकृति का दान

प्रकृति हमें कितना [illegible] कितना [illegible] और [illegible] बना रही है। अनादि काल से हम शक्ति-शान्ति प्राप्त [illegible] रहा है जिससे [illegible] के मोती उगल रही है। [illegible] करने के लिए विकास-शील [illegible] तरस रहा है। [illegible] हरिया-लियाँ दे कर हमें [illegible] रही है। [illegible] काया को स्वर्गीय पुलकों से लादकर हमें विमुग्ध बना जाते हैं। कितना प्रकाश, कितना रस, कितना उल्लास, और कितना आनन्द है! किन्तु मनुष्य कितना दयनीय, कितना अशान्त, और कितना उद्विग्न! ऐसे मानव-संसार को सुव्यवस्थित करने के लिए संसार के मन को मधुर भाव और स्वप्न की आवश्यकता है और यह कार्य केवल कवि और कलाकार ही कर सकेंगे। इनके लिए निःसंदेह कवियों और कलाकारों को अपने ही पुरुषार्थ का प्रदर्शन होगा। मानव-हृदय का नेतृत्व करने लिए पहले स्वयं में शक्ति और प्रकाश उत्पन्न करना होगा। जीवन को साधना रूप में स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

शायद यहाँ कोई घोर यथार्थवादी हमसे नाराज हो जाय कि यथार्थ जगत् में ऐसे आनन्द व सौन्दर्य की बात करना हवाई है। हम विनय भाव से कहते हैं कि ठीक है, संसार में तो संघर्ष ही है। पर क्या संघर्ष को संघर्ष ही रहने दें। संघर्ष व कुरूपता में आनन्द व सौन्दर्य की ओर उठने में ही पुरुषार्थी मानव की शोभा है। संघर्ष अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं है। संघर्ष व्यवस्था के मार्ग की मंजिल है। संघर्ष-वादी मानव-जाति के इतिहास को क्रांतियों युद्धों व अन्य विग्रहों

परिशिष्ट

आलोचना

पं० रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भा० १-२
जायसी ग्रन्थावली की भूमिका
काव्य में रहस्यवाद
भ्रमरगीतसार (भूमिका)

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : पद्माकर पंचामृत की भूमिका

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी-साहित्य की भूमिका

पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : गद्यकाव्यतरंगिणी (सम्पादित)

पं० केशवप्रसाद मिश्र : मेघदूत (हिन्दी-अनुवाद) की भूमिका

बा० गुलाबराय : प्रबन्ध प्रभाकर

डा० नगेन्द्र : सुमित्रानन्दन पंत
विचार और विवेचन

आलोचना

पं० रामचन्द्र शुक्ल	:	चिन्तामणि, भा० १-२
		जायसी ग्रन्थावली की भूमिका
		काव्य मे रहस्यवाद
		भ्रमरगीतसार (भूमिका)
पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	:	पद्माकर पद्मामृत की भूमिका
पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी	:	हिन्दी-साहित्य की भूमिका
पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा	:	गद्यकाव्यतरंगिणी (सम्पादित)
पं० केशवप्रसाद मिश्र	:	मेघदूत (हिन्दी-अनुवाद) की भूमि
बा० गुलाबराय	:	प्रबन्ध प्रभाकर
डा० नगेन्द्र	:	सुमित्रानन्दन पंत
		विचार और विवेचन
डॉ० रघुवंश	:	प्रकृति और काव्य (हिन्दी)
डॉ० किरणकुमारी	:	हिन्दी-काव्य मे प्रकृति-चित्रण
श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव	:	हिन्दी-काव्य मे प्रकृति चित्रण
सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	:	रसमंजरी (काव्यकल्पद्रुम)
श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'	:	काव्य मे अभिव्यंजनावाद
श्री जयशंकर 'प्रसाद'	:	काव्य और कला तथा अन्य नि
श्री शिवदान सिंह	:	प्रगतिवाद
श्री हरिवंश शास्त्री	:	साहित्य-विज्ञान
विवेकानन्द	:	भक्तियोग

(प्राचीन काव्य)

कबीर	:	कबीरग्रन्थावली (बा० श्यामसुन्द
		दास द्वारा सम्पादित)

निराला : परिमल
आराधना
महादेवी वर्मा : यामा
रामकुमार वर्मा : रूपराशि
'बच्चन' : मिलनयामिनी
भगवतीचरण वर्मा : मधुकण
प्रेमसंगीत
उदयशंकर भट्ट : मानसी
विजयपथ
पं० रामचन्द्र शुक्ल : बुद्धचरित
नरेन्द्र शर्मा : प्रभातफेरी
प्रवासी के गीत
अग्नि शस्य
'अंचल' : अपराजिता
वर्षान्त के बादल
'दिनकर' : रेणुका
नेपाली : उमंग
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : अपलक
रामनरेश त्रिपाठी : स्वप्न
पथिक
मैथिलीशरण गुप्त : साकेत
यशोधरा
पंचवटी
श्रीधर पाठक : काश्मीर सुषमा
हरिऔध : प्रियप्रवास
रत्नाकर : उद्धवशतक
गंगावतरण

Shelley	:	Defence of Poetry
Will Durant	:	The Mansions of Philosophy
Matthew Arnold	:	Essays in Criticism, Second Series.
W. H. Hudson	:	An Introduction to the Study of Literature
W. Wordswarth	:	Preface to the Lyrical Ballads.
S. K. De	:	Treatment of Love in Sanskrit Literature

Poetry text

Palgrave	:	Golden Treasury
Tagore	:	Gitanjali
Arnold	:	Poems of Wordsworth (Edited)
Keats	:	Endymion
Shakespeare	:	As You Like It